

# गीताका संदेश

गांधीजी



नवजीवन प्रकाशन मन्दिर

अहमदाबाद



---

# गीताका संदेश

---

गांधीजी

संपादक

आर. के. प्रभु

पहली आवृत्ति: अगस्त, १९५९

मुद्रक और प्रकाशक

नवजीवन प्रकाशन मंदिर

अहमदाबाद



## अनुक्रमणिका

१. गीताका संदेश
२. गीता और अहिंसा
३. यज्ञ
४. गीताकी केन्द्रीय शिक्षा
५. हिन्दू धर्ममें गीताका स्थान
६. गीता पर दो प्रवचन
७. गीता-जयन्ती
८. गीताके कृष्ण
९. कृष्ण-जन्माष्टमी : अेक प्रवचन
१०. हिन्दू विद्यार्थी और गीता
११. स्कूलोंमें गीताकी पढ़ाई
१२. गीता और गिरि-प्रवचन



## १. गीताका संदेश

१. सन् १८८८-८९ में भी जब मेरा गीतासे प्रथम परिचय हुआ, मुझे लगा कि यह कोअी अतिहासिक ग्रंथ नहीं है, परन्तु भौतिक युद्धके बहाने अिसमें अुस द्वन्द्वका वर्णन किया गया है, जो मानव-जातिके हृदयमें सतत होता रहता है। और भौतिक युद्ध केवल अिसीलिए खड़ा किया गया है कि भीतरी द्वन्द्वका वर्णन अधिक आकर्षक हो जाय। यह आरम्भिक स्फुरणा धर्म और गीताके अधिक गहरे अध्ययनसे और भी पक्की हो गअी। महाभारतके अध्ययनसे अुसकी और अधिक पुष्टि हुअी। महाभारतको मैं माने हुए अर्थमें कोअी अतिहासिक ग्रंथ नहीं मानता। आदिपर्वमें मेरे मतके समर्थनमें सबल प्रमाण मिल जाता है। प्रधान पात्रोंकी अमानुषी और अतिमानुषी अुत्पत्ति बताकर व्यास भगवानने राजा-प्रजाके अितिहासका काम खतम कर दिया है। अुसमें वर्णित व्यक्ति अतिहासिक हो सकते हैं, परन्तु महाभारतकारने अुनका अुपयोग अपने धार्मिक विषयको समझानेके लिये ही किया है।

२. महाभारतकारने भौतिक युद्धकी आवश्यकताको सिद्ध नहीं किया है; अिसके विपरीत अुसने अुसकी व्यर्थताको प्रमाणित किया है। अुसने विजेताओंको शोक और पश्चान्तापसे रुलाया है और अुनके लिये दुःखोंके सिवा और कुछ नहीं छोड़ा है।

३. अिस महान रचनामें गीता मुकुटके समान है। अुसके दूसरे अध्यायमें भौतिक युद्धके नियम सिखानेके बजाय स्थितप्रज्ञके लक्षण बताये गये हैं। गीताके स्थितप्रज्ञके लक्षणोंमें मुझे तो भौतिक युद्धसे मेल खानेवाली कोअी बात दिखाअी नहीं देती। सारी रचना अैसी है कि युद्ध करनेवाले दलोंके लिये लागू होनेवाले आचरणके नियमोंका अुससे कोअी मेल नहीं बैठता।

४. गीताके कृष्ण पूर्णता और सम्यक् ज्ञानकी मूर्ति हैं; परन्तु यह चित्र काल्पनिक है। अिसका यह अर्थ नहीं है कि प्रजाका प्यारा कृष्ण कभी हुआ ही नहीं। किन्तु अुसकी पूर्णता काल्पनिक है। संपूर्ण अवतारका विचार बादमें बना है।

५. हिन्दू धर्ममें अवतार अुस पुरुषको माना गया है, जिसने मानव-जातिकी कोअी असाधारण सेवा की हो। वास्तवमें सभी शरीरधारी प्राणी अीश्वरके अवतार हैं। परन्तु प्रत्येक



प्राणीको आम तौर पर अवतार नहीं माना जाता। जिसने अपने समयमें अपने आचरण द्वारा असाधारण धार्मिकता दिखायी हो, उसे आगे आनेवाली पीढ़ियां अवतार मानकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करती हैं। जिसमें मुझे कोयी बुरायी नजर नहीं आती; जिससे श्रीश्वरकी महानता कम नहीं होती और सत्यकी भी कोयी हानि नहीं होती। अर्द्धमें एक कहावत है — 'आदम खुदा नहीं, लेकिन खुदाके नूरसे आदम जुदा नहीं' । और जिसलिए जिसका आचरण सबसे अधिक धार्मिक रहा हो, उसमें वह नूर सबसे अधिक होता है। इसी विचारधाराके अनुसार कृष्णको हिन्दू धर्ममें संपूर्ण अवतारका पद प्राप्त है।

६. अवतारमें यह विश्वास मनुष्यकी अुंची आध्यात्मिक महत्त्वाकांक्षाका प्रमाण है। मनुष्य जब तक श्रीश्वरके समान नहीं बन जाता, तब तक उसे भीतरी शांति नहीं मिलती । जिस स्थितिको पहुंचनेका प्रयत्न ही सर्वोपरि और अेकमात्र अिष्ट महत्त्वाकांक्षा है। और यही आत्म-साक्षात्कार है। तमाम धर्मग्रंथोंकी तरह गीताका विषय भी यही आत्म-साक्षात्कार है। परन्तु गीताकारने जिस सिद्धान्तकी स्थापनाके लिये उसे नहीं लिखा है। गीताका अुद्देश्य मुझे आत्मार्थीको आत्म-साक्षात्कार करनेका श्रेष्ठ मार्ग बताना मालूम होता है। जो वस्तु थोड़ी या बहुत स्पष्टताके साथ हिन्दू धर्मग्रंथोंमें अधि-अुधर बिखरी हुयी पायी जाती है, उसे गीताने-पुनरुक्तिका खतरा अुठाकर भी अधिकसे अधिक स्पष्ट भाषामें स्थापित किया है।

७. वह अद्वितीय अुपाय कर्मके फलका त्याग है।

८. इसी मध्यबिन्दुके चारों ओर गीताकी रचना हुयी है। यह त्याग केन्द्रीय सूत्र है और उसके चारों ओर भक्ति, ज्ञान आदि ग्रहोंकी तरह घूमते हैं। जिस शरीरको कारागारकी अुपमा दी गयी है। जहां शरीर है वहां कर्म अवश्य है। किसी भी शरीरधारीको कर्मसे मुक्त नहीं किया गया है। फिर भी सारे धर्म यह घोषणा करते हैं कि मनुष्य अपने शरीरको देव-मंदिर समझे और तदनुसार आचरण करे तो मुक्ति प्राप्त कर सकता है । प्रत्येक कर्म, चाहे कितना ही तुच्छ हो, दूषित होता है। तब शरीरको देव-मंदिर कैसे बनाया जा सकता है; दूसरे शब्दोंमें मनुष्य कर्मके बन्धनसे अर्थात् पापके दोषसे मुक्त कैसे हो सकता है? गीताने जिस प्रश्नका अुत्तर निश्चित भाषामें दिया है:



“निष्काम कर्म से; कर्मफलका त्याग करके; सब कर्मोंको अश्वरार्पण करनेसे – अर्थात् अपने आपको शरीर और आत्माके साथ अश्वरको अर्पण कर देनेसे।”

९. परन्तु निष्कामता या त्याग सिर्फ अुसकी बात करनेसे नहीं आता । वह बुद्धिबलसे प्राप्त नहीं होता । वह सतत हृदय-मंथनसे ही सिद्ध हो सकता है । त्यागकी प्राप्तिके लिअे सम्यक् ज्ञान जरूरी है। विद्वान लोंगोंके पास अेक तरहका ज्ञान होता है। अुन्हें वेद कण्ठस्थ हो सकते हैं, फिर भी वे भोग-विलासमें डूबे रह सकते हैं। ज्ञान शुष्क पाण्डित्यका रूप न ले ले, अिसके लिअे गीताकारने आग्रह किया है कि ज्ञानके साथ भक्ति होनी चाहिये; और अुसे प्रथम स्थान दिया है। भक्तिके बिना ज्ञान व्यर्थ है। अिसलिअे गीता कहती है: ‘भक्ति होगी तो ज्ञान अपने-आप आ जायगा।’ यह भक्ति शाब्दिक पूजामात्र नहीं है, यह तो ‘सिरका सौदा’ है। अिसीलिअे गीताकारने भक्तके लक्षण स्थितप्रज्ञ जैसे ही बताये हैं।

१०. अिस प्रकार गीतामें जिस भक्तिकी अपेक्षा रखी गयी है, वह कोअी कोमल हृदयका अुच्छवास नहीं है। अन्धश्रद्धा तो वह है ही नहीं । गीताकी भक्तिका बाह्याचारसे कमसे कम संबंध है। भक्त चाहे तो माला, तिलक और अर्ध्यादिका अुपयोग कर सकता है, परन्तु ये वस्तुअें अुसकी भक्तिकी कसौटी नहीं हैं। भक्त वह है जो किसीसे अीर्ष्या नहीं रखता, जो दयाका भंडार है, जो अहंकारसे रहित है, जो निःस्वार्थ है, जो गर्मी-सर्दी और सुख-दुःखको समान समझता है, जो सदा क्षमाशील है, जो सदा संतुष्ट रहता है, जिसके निश्चय दृढ़ होते हैं, जिसने मन और आत्माको अीश्वरके अर्पण कर दिया है, जो न दूसरोंको डराता है न दूसरोंसे डरता है, जो हर, शोक और भयसे मुक्त है, जो शुद्ध है, जो कर्ममें कुशल है फिर भी अुससे प्रभावित नहीं होता, जो शुभाशुभ सभी कर्मफलोंका त्याग करता है, जो शत्रु-मित्र सबको समान समझता है, जो मान-अपमानसे अछूता है, जो प्रशंसासे फूल नहीं जाता और निन्दासे जिसे ग्लानि नहीं होती, जिसे मौन और अेकान्तसे प्रेम है और जिसकी बुद्धि स्थिर है। अिस प्रकारकी भक्तिका प्रबल आसक्तियोंके साथ मेल नहीं बैठ सकता ।



११. जिस प्रकार हम देखते हैं कि सच्चा भक्त होना आत्म-साक्षात्कार करना है। आत्म-साक्षात्कार को भी अलग वस्तु नहीं है। एक रुपयेसे हम विष भी खरीद सकते हैं और अमृत भी; परन्तु ज्ञान या भक्तिसे न मुक्ति खरीदी जा सकती है, ना बंधन। वे विनिमयके साधन नहीं हैं। वे स्वयं अभीष्ट वस्तुओं हैं। दूसरे शब्दोंमें यदि साधन और साध्य पूर्णतया एक नहीं हैं, तो लगभग एक अवश्य हैं। साधनकी पराकाष्ठा ही मुक्ति है। गीताकी मुक्ति परम शांति है।

१२. परन्तु जिस ज्ञान और भक्तिको कर्मफल-त्यागकी कसौटी पर खरा अुतरना पड़ता है। भले-बुरेके ज्ञानसे ही को भी मोक्षका अधिकारी नहीं बनता। सामान्य कल्पनाम कोरा पंडित भी ज्ञानी मान लिया जाता है। अुसे को भी काम करनेकी जरूरत नहीं होती। छोटेसे लोटेको अुठाना भी वह बंधन समझेगा। जहां ज्ञानकी एक कसौटी सेवा न करना हो, वहां लोटा अुठाने जैसी लौकिक क्रियाकी गुंजाअिश कैसे हो सकती है?

१३. या भक्तिको लीजिये। भक्तिकी सामान्य कल्पना यह है कि भक्तका हृदय कोमल होना चाहिये, अुसे माला जपते रहना चाहिये आदि। प्रेमपूर्ण सेवाकर्म करनेसे भी अुसकी मालामें विक्षेप आता है! अिसलिये यह भक्त खाने-पीने आदिके लिये ही माला छोड़ता है, आटा पीसने या बीमारोंकी सेवाके लिये कभी नहीं छोड़ता।

१४. परन्तु गीता कहती है: 'कर्मके बिना किसीको सिद्धि प्राप्त नहीं हुअी है। जनक जैसे पुरुषोंको भी कर्मसे ही मोक्ष प्राप्त हुआ था। अगर मैं आलस्यवश काम करना छोड़ दूं तो संसारका नाश हो जाये।' तब फिर साधारण लोगोंके लिये कर्ममें लगे रहना कितना ज्यादा जरूरी है?

१५. जहां एक ओर यह निर्विवाद है कि सभी कर्म बंधनकारी होते हैं, वहां दूसरी ओर यह भी अुतना ही सही है कि वे चाहें या न चाहें सभी प्राणियोंको कुछ न कुछ कर्म करना पड़ता है। यहां मानसिक हो या शारीरिक, सभी प्रवृत्तियां कर्म शब्दमें शामिल हैं। तब फिर कर्म करते हुअे भी मनुष्य कर्मके बन्धनसे कैसे मुक्त हो सकता है? गीताने अिस समस्याको जिस ढंगसे हल किया है वह मेरी जानकारीमें अनोखा है। गीता कहती है: 'नियत कर्म करो, परन्तु अुसके फलका त्याग करो — अनासक्त होकर कर्म करो — फलकी अिच्छा छोड़कर कर्म करो।



यह है गीताका असंदिग्ध उपदेश । जो कर्म छोड़ता है उसका पतन होता है । जो केवल फलको छोड़ता है उसका अुत्कर्ष होता है। परन्तु फलके त्यागका मतलब ऐसा हरगिज नहीं कि हम परिणामके प्रति अुदासीन हो जायं । प्रत्येक कर्मके बारेमें मनुष्यको यह मालूम होना चाहिये कि वह उससे किस परिणामकी आशा रखता है, उसके साधन क्या है और उसके लिये कैसी क्षमता चाहिये। जिसकी जितनी तैयारी होगी परन्तु फलकी अिच्छा नहीं होगी और फिर भी जो अपने नियत कर्मको अच्छी तरह पूरा करनेमें पूरी तरह संलग्न होगा, उसके लिये यह कहा जायगा कि उसने कर्म-फलका त्याग कर दिया है।

१६. साथ ही, कोअी त्यागका यह अर्थ न समझे कि त्यागीको फल नहीं मिलता। गीताके वचनोंसे अैसा अर्थ नहीं निकलता । त्यागका अर्थ है फलकी लालसा न रखना। सच तो यह है कि जो छोड़ता है उसे सहस्र गुना मिलता है। गीताका त्याग श्रद्धाकी चरम परीक्षा है। जो सदा फलकी चिन्ता करता रहता है वह कअी बार कर्तव्य-भ्रष्ट होता है। वह अधीर हो जाता है और फिर क्रोध प्रगट करता है और अयोग्य कार्य करने लगता है; वह अेकसे दूसरेमें और दूसरेसे तीसरे कर्ममें पड़ता है और किसी अेक कर्मके प्रति वफादार नहीं रहता । जो फलकी चिन्ता करता है उसकी स्थिति विषयोंमें आसक्त मनुष्य जैसी हो जाती है; वह सदा अुद्विग्न रहता है, सब सिद्धान्तोंको तिलांजलि दे डालता है। उसे नीति-अनीतिका विवेक नहीं रहता और अिसलिये वह अपने अुद्देश्यकी पूर्तिक लिये अच्छे-बुरे सभी साधनोंका आश्रय लेता है।

१७. फलेच्छाके अैसे कटु परिणामोंसे गीताकारने फलत्यागका मार्ग खोज निकाला है और उसे अतिशय आकर्षक माषामें संसारके सामने रखा है । सामान्य मान्यता यह है कि धर्म और अर्थ अेक-दूसरेके विरोधी हैं । हम अनेक दुनियादार लोगोंको यह कहते सुनते हैं कि “मनुष्य व्यापार आदि लौकिक व्यवहारमें धर्माचरण नहीं कर सकता। उसे कामोंमें धर्मका स्थान नहीं होता; धर्म तो केवल मोक्षकी प्राप्तिके लिये है।” मेरी रायमें गीताकारने अिस भ्रमको मिटा दिया है। उसने मोक्षमें और सांसारिक कर्मोंमें कोअी भेद नहीं रखा है। अिसके विपरीत उसने सिद्ध किया है कि हमारे सांसारिक कर्मोंमें भी धर्मकी प्रधानता रहनी चाहिये । मैं तो अिस निश्चय पर





पहुंचा हूं कि गीता हमें यह सिखाती है कि जो वस्तु व्यवहारमें नहीं अुतारी जा सकती अुसे धर्म नहीं कहा जा सकता। अिस प्रकार गीताके अनुसार अैसे सब कर्म, जो आसक्तिके बिना नहीं किये जा सकते, निषिद्ध हैं। यह स्वर्ण-नियम मनुष्य-जातिको अनेक प्रकारके पतनसे बचाता है। अिस अर्थके अनुसार हत्या, झूठ, व्यभिचार आदि कर्म सहज ही त्याज्य और अिसलिअे निषिद्ध हो जाते हैं। फिर मनुष्यका जीवन सरल बन जाता है और अुस सरलतामें से शांति अुत्पन्न होती है।

१८. जिस विचारश्रेणीका अनुसरण करते हुअे मुझे महसूस हुआ है कि गीताके केन्द्रीय अुपदेशको अपने जीवनमें कार्यान्वित करनेका प्रयत्न करते हुअे हमें सत्य और अहिंसाका पालन करना ही होगा। जब फलकी कोअी अिच्छा नहीं है, तब असत्य या हिंसाका कोअी प्रलोभन नहीं हो सकता। असत्य या हिंसाका कोअी भी अुदाहरण लीजिये तो पता चलेगा कि अुसके पीछे वांछित फल प्राप्त करनेकी अिच्छा रही है। परन्तु यह मुक्तकंठसे स्वीकार किया जा सकता है कि गीता अहिंसाकी स्थापनाके लिअे नहीं लिखी गअी। गीता-कालके पहले ही अहिंसा परम धर्मकी तरह स्वीकार कर ली गयी थी। गीताको तो अनासक्तिका सिद्धान्त बताना था। यह बात दूसरे अध्यायमें ही स्पष्ट हो जाती है।

१९. परन्तु यदि गीताको अहिंसा मान्य थी अथवा अनासक्तिमें अहिंसा सहज ही आ जाती है, तो फिर गीताकारने भौतिक युद्धका अुदाहरण क्यों लिया ? जब गीता लिखी गअी थी अुस समय अहिंसा धर्म तो मानी जाती थी, परन्तु युद्धोंका निषेध नहीं था। अितना ही नहीं, किसीको युद्धों और अहिंसामें विरोध दिखाअी भी नहीं देता था।

२०. फलत्यागके महत्त्वका हिंसाब लगाते समय हमें गीताकारके मनकी खोज करके यह जाननेकी जरूरत नहीं कि अहिंसा आदिके विषयमें अुसकी क्या मर्यादाअें थीं। कवि संसारके सामने अमुक सत्य प्रस्तुत करता है, अिससे यह निष्कर्ष निकालना जरूरी नहीं कि वह अुसके महत्त्वको संपूर्ण रूपसे पहचानता ही है, या पहचानता हो तो अुसे भाषामें हमेशा पूरी तरह अभिव्यक्त कर ही सकता है। शायद अिसीमें अुस काव्यकी और कविकी महिमा है। कविके अथेका कोअी पार ही नहीं है। मनुष्यकी भांति महान रचनाओंके अर्थका भी विकास होता है।



भाषाओंके इतिहासकी जांच-पड़ताल करने पर हम देखते हैं कि महत्त्वपूर्ण शब्दोंके अर्थ नित्य नये होते रहते हैं या उनका विस्तार होता जाता है। यही बात गीताकी है। स्वयं ग्रंथकारने कुछ प्रचलित शब्दोंके अर्थोंका विस्तार कर दिया है। ऊपर ऊपरसे देखने पर भी हमें इस बातका पता चल जाता है। यह संभव है कि गीतासे पहलेके युग यज्ञमें पशुबलि विहित थी। परन्तु गीताके यज्ञके अर्थमें इसका चिह्न भी नहीं है। गीतामें जपयज्ञ यज्ञोंका राजा कहा गया है। तीसरे अध्यायसे सूचित होता है कि यज्ञका अर्थ मुख्यतः सेवाके लिये शरीर-श्रम है। तीसरे और चौथे अध्यायको एकसाथ पढ़नेसे हमें यज्ञके और और अर्थ तो मिलेंगे, परन्तु पशुबलिका अर्थ हरगिज नहीं मिलेगा। इसी प्रकार गीतामें सन्यास शब्दकी भी कायापलट हो गयी है। गीताका सन्यास सभी कर्मोंका सर्वथा त्याग सहन नहीं करता। गीताका सन्यास तो कर्ममय है और फिर भी अकर्म है। इस प्रकार गीताकारने शब्दोंके अर्थका विस्तार करके हमें सिखाया है कि गीताकी भाषाका भी व्यापक अर्थ किया जाय। मान लीजिये कि गीताके शब्दार्थक अनुसार यह कहा जा सके कि युद्धका फलत्यागसे मेल खाता है। परन्तु ४० वर्ष तक गीताके उपदेशको अपने जीवनमें अुतारनेका लगातार प्रयत्न करनेके बाद मुझे पूर्ण नम्रतासे यह अनुभव हुआ है कि सत्य और अहिंसाके पूर्ण पालनके बिना पूर्ण कर्मफल-त्याग मनुष्यके लिये असंभव है।

२१. गीता सूत्रग्रंथ नहीं है; वह एक महान धर्मकाव्य है। उसमें जितनी गहरी डुबकी लगायेंगे उतने ही नये और सुन्दर अर्थ मिलेंगे। सर्वसाधारणके लिए होनेके कारण उसमें सुखद पुनरुक्ति है। इसलिये गीतामें आये हुए महाशब्दोंके अर्थ युग-युगमें बदलते और विस्तृत होते रहेंगे। परन्तु उसके केन्द्रीय अर्थमें कभी फर्क नहीं पड़ेगा। शोधकको स्वतंत्रता है कि इस भंडारमें से वह जैसा चाहे वैसा अर्थ निकाल लें, जिससे वह अपने जीवनमें इस केन्द्रीय उपदेश पर अमल कर सके।

२२. गीता कोअी विधि-निषेधोंका संग्रह भी नहीं है। जो वस्तु एक मनुष्यके लिये विहित है, वह दूसरेके लिये निषिद्ध हो सकती है। जो चीज एक समय या एक स्थानके लिये मान्य हो,



वह दूसरे समय और दूसरे स्थानके लिये मान्य न भी हो। लेकिन फलासक्तिका सर्वत्र निषेध है। अनासक्ति सर्वत्र अनिवार्य है।

२३. गीताने ज्ञानका गुणगान किया है, परन्तु वह निरी बूद्धिसे परे है। वह हृदयको लक्ष्यमें रखकर कही गयी है और हृदयगम्य ही है। जिसलिये गीता अुनके लिए नहीं है जिनमें श्रद्धा नहीं है। स्वयं ग्रंथकारने कृष्णसे कहलवाया है :

“जो तपस्वी नहीं है, जो सुननेकी अिच्छा नहीं रखता और जो मेरा द्वेष करता है, अुससे तू यह ज्ञान कभी न कहना। परन्तु जो यह परम गुह्य ज्ञान मेरे भक्तोंको प्रदान करेंगे, वे अवश्य ही अिस सेवा द्वारा मुझे प्राप्त करेंगे। और जो द्वेषमुक्त होकर श्रद्धापूर्वक अिस अुपदेशको केवल सुनें, वे भी मोक्ष प्राप्त करके वहां रहेंगे जहां सच्चे पुण्यवान ं मृत्युके बाद रहते हैं।”

यंग इण्डिया, ६-८-१९३१



## २. गीता और अहिंसा

१८८९ के सालमें गीताजीसे मेरा प्रथम परिचय हुआ। उस समय मेरी उम्र २० सालकी थी। उस समय में अहिंसा धर्मको बहुत ही थोड़ा समझता था। शत्रुको भी प्रेमसे जीतना चाहिये, यह मैं गुजराती कवि शामल भट्टके अिस छप्पयसे सीखा था “पाणी आपने पाय भलूं मोजन तो दीजे”। अिसमें रहा हुआ सत्य मेरे हृदयमें अच्छी तरह बैठ गया था। किन्तु उस समय मुझे अिसमें से जीवदयाकी स्फुरणा नहीं हुआ थी। अिसके पहले मैं देशमें ही मांसाहार कर चुका था। मैं मानता था कि सर्पादिका नाश करना धर्म है। आज मैं यह मानता हूं कि जैसे जहरी जीवोंको भी नहीं मारना चाहिये। उस समय मैं यह मानता था कि हमें अंग्रेजोंके साथ लड़नेके लिये तैयारी करनी होगी। ‘अंग्रेज हमपर राज्य करते है अिसमें आश्चर्य ही क्या है?’ अिस मतलबकी एक कविता मैं गुनगुनाया करता था,। मेरा मांसाहार अिसी तैयारीके लिये था। विलायत जानेके पहले मेरे जैसे विचार थे। मैं मांसाहार अित्यादिसे बच गया अिसका कारण माताको दिये हुअे वचनोंका मरणांत पालन करनेकी मेरी दृष्टि थी। सत्यके प्रति मर प्रेमने बहुतसी आपत्तियोंसे मेरी रक्षा की है।

अब दो अंग्रेजोंके सम्पर्कमें आनेसे मुझे गीता पढ़नी पड़ी। ‘पढ़नी पड़ी’ मैं अिसलिअे कहता हूं, क्योंकि अुसे पढ़नेकी मुझे कोअी खास अिच्छा नहीं थी। लेकिन जब अुन दो भाअियोंने मुझे अपने साथ गीता पढ़नेको कहा तब मैं शर्मिन्दा हुआ। मुझे अपने धर्मशास्त्रोंका कुछ भी ज्ञान नहीं है, अिस खयालसे मुझे बड़ा दुःख हुआ। अिस दुःखका कारण मालूम होता है मेरा अभिमान था। मेरा संस्कृतका अध्ययन ऐसा तो था ही नहीं कि गीताजीके सब श्लोकोंका अर्थ मैं बिना किसी मददके ठीक ठीक समझ लूं। वे दोनों भाअी तो संस्कृत जरा भी नहीं समझते थे। अुन्होंने सर अेडविन आर्नोल्डका गीताजीका अुत्तमोत्तम काव्यानुवाद मेरे सामने रख दिया। मैंने तो फौरन ही अुस पुस्तकको अथसे अिति तक पढ़ डाला और अुस पर मैं मुग्ध हो गया। तबसे लेकर आज तक दूसरे अध्यायके अन्तिम अुन्नीस श्लोक मेरे हृदयमें अंकित हो गये हैं। मेरे लिये तो सब धर्म अुसीमें आ गया है। अुसमें संपूर्ण ज्ञान है। अुसमें कहे हुआ सिद्धान्त अचल हैं। अुसमें बुद्धिका भी संपूर्ण प्रयोग किया गया है। लेकिन यह बुद्धि संस्कारी बुद्धि है। अुसमें अनुभव-ज्ञान है।



असि परिचयके बाद तो मैंने बहुतसे अनुवाद पढ़े, बहुतसी टीकाओं पढ़ीं, बहुतसे तर्क किये और सुने। लेकिन प्रथम अनुवाद पढ़ने पर मुझ पर जो छाप पड़ी थी वह दूर नहीं होती। ये श्लोक गीताजीका अर्थ समझनेकी कुंजी है। उससे विरोधी अर्थवाले वचन यदि मिलें तो उन्हें त्याग करनेकी भी मैं सलाह दूंगा। नम्र और विनयी मनुष्यको तो त्याग करनेकी कोअी जरूरत नहीं है। वह तो सिर्फ यों ही कह दे कि 'दूसरे श्लोकोंका आज असिके साथ मेल नहीं मिलता है तो यह मेरी बुद्धिका ही दोष है; समय बीतने पर उनका और अिन अुन्नीस श्लोकोंमें कहे गये सिद्धान्तोंका भी मेल मिल रहेगा।' अपने मनसे और दूसरोंसे यह कह कर वह शान्त हो जाय।

शास्त्रोंका अर्थ करनेमें संस्कार और अनुभवकी आवश्यकता है। " शूद्रको वेदका अध्ययन करनेका अधिकार नहीं ' यह वाक्य सर्वथा गलत नहीं है। शूद्र अर्थात् असंस्कारी, मूर्ख, अज्ञान मनुष्य; वे वेदादिका अध्ययन करके उनका अनर्थ करेंगे। बड़ी अुम्रके भी सब लोग बीजगणितके कठिन प्रश्न अपने-आप समझनेके अधिकारी नहीं हैं। उनको समझनेके पहले उन्हें कुछ प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। व्यभिचारीके मुखमें 'अहं ब्रह्मास्मि' क्या शोभा देगा ? उसका वह कैसा अर्थ (या अनर्थ ! ) करेगा ?

अतः शास्त्रोंका अर्थ करनेवाला यमादिका पालन करनेवाला होना चाहिये। यमादिका शुष्क पालन जैसा कठिन है वैसा ही निरर्थक भी है। शास्त्रोंने गुरुका होना आवश्यक माना है, लेकिन असि जमानेमें गुरुओंका तो करीब-करीब लोप-सा हो गया है। ज्ञानी लोग अिसीलिअे भक्ति-प्रधान प्राकृत ग्रंथोंका पठन-पाठन करनेकी शिक्षा देते हैं। किन्तु जिसमें भक्ति नहीं, श्रद्धा नहीं, वह शास्त्रोंका अर्थ करनेका अधिकारी नहीं होता। विद्वान लोग उनमें से विद्वत्तापूर्ण अर्थ भले ही निकालें, लेकिन वह शास्त्रार्थ नहीं । शास्त्रार्थ तो अनुभवी मनुष्य ही कर सकता है।

परन्तु प्राकृत मनुष्योंके लिअे भी कुछ सिद्धान्त तो हैं ही । शास्त्रोंके वे अर्थ, जो सत्यके विरोधी हैं, सही नहीं हो सकते । जिसे सत्यके सत्य होनेके बारेमें ही शंका है अुसके लिअे शास्त्र हैं ही नहीं; अथवा यों कहिये कि अुसके लिअे सब शास्त्र अशास्त्र हैं। अुसको कोअी नहीं पहुंच सकता। जिसे शास्त्रोंमें से अहिंसा प्राप्त नहीं हुअी है अुसके लिअे भय है, लेकिन अुसका अुद्धार



न हो यह बात नहीं। सत्य विधायक है, अहिंसा निषेधक है। सत्य वस्तुका साक्षी है, अहिंसा वस्तु होने पर भी उसका निषेध करती है। सत्य है, असत्य नहीं है। हिंसा है, अहिंसा नहीं है। फिर भी अहिंसा ही होनी चाहिये। यही परम धर्म है। सत्य स्वयंसिद्ध है, अहिंसा उसका संपूर्ण फल है। सत्यमें वह छिपी हुई ही है। वह सत्यकी तरह व्यक्त नहीं है। जिसलिए उसको मान्य किये बिना मनुष्य भले ही शास्त्रोंकी शोध करे, परन्तु उसका सत्य आखिर उसे अहिंसा ही सिखायेगा।

सत्यके लिये तपश्चर्या तो करनी ही पड़ती है। सत्यका साक्षात्कार करनेवाले तपस्वीने चारों ओर फैली हुई हिंसामें से अहिंसा देवीको संसारके सामने प्रकट करके कहा : हिंसा मिथ्या है, माया है, अहिंसा ही सत्य वस्तु है। अहिंसाके बिना सत्यका साक्षात्कार असंभव है। ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह भी अहिंसाके लिये ही हैं। ये अहिंसाको सिद्ध करनेवाले हैं। अहिंसा सत्यका प्राण है। उसके बिना मनुष्य पशु है।' सत्यार्थी अपनी खोजके लिये प्रयत्न करते हुए यह सब बड़ी जल्दी समझ लेगा और फिर उसे शास्त्रोंका अर्थ करनेमें कोई कठिनाई पेश न आयेगी।

शास्त्रका अर्थ करनेमें दूसरा नियम यह है कि उसके शब्दोंको पकड़ कर नहीं बैठना चाहिये, लेकिन उसकी ध्वनि देखना चाहिये, उसका रहस्य समझना चाहिये। तुलसीदासजीकी रामायण उत्तम ग्रन्थ है, क्योंकि उसकी ध्वनि स्वच्छता है, दया है, भक्ति है। उसने 'शूद्र गंवार ढोल अरू नारी ये सब ताड़नके अधिकारी' लिखा है, जिसलिए यदि कोई पुरुष अपनी स्त्रीको मारे तो उसकी अधोगति होगी। रामचन्द्रजीने सीताजी पर कभी प्रहार नहीं किया, अतना ही नहीं उन्हें कभी दुःख भी नहीं पहुंचाया। तुलसीदासजीने केवल प्रचलित वाक्यको लिख दिया है। उन्हें जिस बातका खयाल भी न हुआ होगा कि जिस वाक्यका आधार लेकर अपनी अर्धांगनाका ताड़न करनेवाले पशु भी कहीं निकल पड़ेंगे। यदि स्वयं तुलसीदासजीने भी रिवाजके वशवर्ती होकर अपनी पत्नीका ताड़न किया हो तो भी क्या? वह ताड़त अवश्य ही दोष है। फिर भी रामायण पत्नीके ताड़नके लिये नहीं लिखी गयी है। रामायण तो पूर्ण पुरुषका दर्शन करानेके लिये, सती-शिरोमणि सीताजीका परिचय करानेके लिये और भरतकी आदर्श भक्तिका चित्र चित्रित करनेके लिये लिखी गयी है। दोषयुक्त रिवाजोंका समर्थन जो उसमें पाया जाता है वह



त्याज्य है। तुलसीदासजीने, भूगोल सिखानेके लिअे अपना अमूल्य ग्रन्थ नहीं बनाया है, अिसलिअे अुनके ग्रंथमें यदि गलत भूगोल पाया जाय तो अुसका त्याग करना हमारा घर्म है।

अब गीताजीको देखें। ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति और अुसके साधन यही गीताजीका विषय है। दो सेनाओंके बीच युद्धका होना तो निमित्त है। यह भले ही कह सकते हैं कि कवि स्वयं युद्धादिको निषिद्ध नहीं मानते थे और अिसलिअे अुन्होंने युद्धके प्रसंगका अिस प्रकार अुपयोग किया है। महाभारत पढ़नेके बाद तो मेरे अुपर जूदी ही छाप पड़ी है। व्यासजीने अितने सुन्दर ग्रंथकी रचना करके युद्धके मिथ्यात्वका ही वर्णन किया है। कौरव हारे तो अुससे क्या हुआ ? और पाण्डव जीते तो भी अुससे क्या हुआ ? विजयी कितने बचे? अुनका क्या हुआ? कुन्ती माताका क्या हुआ ? और आज यादव-कुल कहां है?

जहां विषय युद्ध-वर्णण और हिंसाका प्रतिपादन नहीं है, वहां अुस पर जोर देना केवल अुनुचित ही माना जायगा। और यदि कुछ श्लोकोंका सम्बन्ध अहिंसाके साथ बैठाना मुश्किल मालूम होता है, तो सारी गीताजीको हिंसाके चौखटेमें मढ़ना अुससे कहीं ज्यादा मुश्किल है।

कवि जब किसी ग्रंथकी रचना करता है तो वह अुसके सब अर्थोंकी कल्पना नहीं कर लेता है। काव्यकी यही खूबी है कि वह कविसे भी बढ़ जाता है। जिस सत्यका वह अपनी तन्मयतासे अुच्चारण करता है, वही सत्य अुसके जीवनमें अकसर नहीं पाया जाता। अिसलिअे बहुतेरे कवियों का जीवन अुनके काव्योंके साथ सुसंगत नहीं मालूम होता है। गीताजीका केन्द्रीय विचार हिंसा नहीं है लेकिन अहिंसा है; यह दूसरा अध्याय जिससे विषयका आरम्भ होता है और अठारहवां अध्याय जिसमें अुसकी पूर्णाहुति होती है देखनेसे प्रतीत होगा। मध्यमें देखोगे तो भी यही प्रतीत होगा। बिना क्रोधके, रागके या द्वेषके हिंसाका होना संभव नहीं। और गीता तो क्रोधादिको पार करके गुणातीतकी स्थितिमें हमें पहुंचानेका प्रयत्न करती है। गुणातीतमें क्रोधका सर्वथा अभाव होता है। अर्जुनने कान तक खींच कर जब जब अपना धनूष चढ़ाया होगा अुस समयकी अुसकी लाल-लाल आंखें मैं आज भी देख सकता हूं।



परन्तु अर्जुनने कब अहिंसाके लिअे युद्ध छोड़नेका आग्रह किया था ? अुसने तो बहुतसे युद्ध किये थे । अुसे यकायक मोह हो गया था। वह अपने सगे-संबन्धियोंको नहीं मारता चाहता था। अर्जुनने दूसरोंको, जिन्हें वह पापी समझता था, न मारनेकी बात तो नहीं की थी। श्रीकृष्ण तो अन्तर्यामी हैं। वे अर्जुनका यह क्षणिक मोह समझ लेते हैं और अिसलिए अुससे कहते हैं : 'तुम हिंसा तो कर चुके हो । अब अिस प्रकार यकायक समझदार बननेका दंभ करके तुम अहिंसा नहीं सीख सकोगे। अिसलिए जिस कामका तुमने आरम्भ किया है अुसे अब तुम्हें पूरा ही करना चाहिए।' घण्टेमें चालीस मीलके वेगसे जानेवाली रेलगाड़ीमें बैठा हुआ व्यक्ति यकायक प्रवास-विरक्त होकर यदि चलती हुआ गाड़ीसे ही कूद पड़े तो यही कहा जायगा कि अुसने आत्महत्या की है। अुससे अुसने प्रवास या रेलगाड़ीमें बैठनेके मिथ्यात्वको कुछ नहीं सीखा है। अर्जुनका भी यही हाल था। अहिंसक कृष्ण अर्जुनको दूसरी सलाह दे ही नहीं सकते थे । लेकिन अुससे हम यह अर्थ नहीं निकाल सकते कि गीताजीमें हिंसाका ही प्रतिपादन किया गया है। यह अर्थ निकालना अुतना ही अनुचित है जितना यह कहना कि शरीर-व्यापारके लिअे कुछ हिंसा अनिवार्य है अिसलिअे हिंसा ही जीवनका धर्म है। सूक्ष्मदर्शी अिस हिंसामय शरीरसे अशरीरी होनेका अर्थात् मोक्षका ही धर्म सिखाता है।

लेकिन धृतराष्ट्र कौन थे ? दुर्योधन, युधिष्ठिर और अर्जुन कौन थे ? कृष्ण कौन थे ? क्या ये सब अैतिहासिक पुरुष थे ? और क्या गीताजीमें अुनके स्थूल व्यवहारका ही वर्णन किया गया है? क्या अर्जुन अकस्मात युद्धमें सवाल करता है और कृष्ण सारी गीता पढ़ जाते हैं? और क्या यही गीता अर्जुन मेरा मोह नष्ट हो गया है यह कहकर भी भूल जाता है और कृष्णसे दुबारा अनुगीता कहलवाता है ?

मैं तो दुर्योधनादिको आसुरी और अर्जुनादिको दैवी वृत्तियां मानता हूं। धर्मक्षेत्र यह हमारा शरीर ही है। अुसमें द्वंद्व चलता ही रहता है। और अनुभवी अृषि कवि अुसका तादृश वर्णन करते हैं। कृष्ण तो अंतर्यामी हैं और हमेशा शुद्ध चित्तमें घड़ीकी तरह टिक टिक करते रहते हैं। यदि





चित्तको चित्तशुद्धिरूपी चाबी नहीं दी गयी हो तो अंतर्दामी यद्यपि वहां रहते हैं, फिर भी अणुका टिकटिकाना अवश्य बन्द हो जाता है।

कहनेका आशय यह नहीं कि इसमें स्थूल युद्धके लिए अवकाश ही नहीं है। जिसे अहिंसा सूझी ही नहीं है अणुसे (गीतामें) यह धर्म नहीं सिखाया गया है कि कायर बनना चाहिये। जिसे भय लगता है, जो संग्रह करता है, जो विषयमें रत है, वह अवश्य ही हिंसामय युद्ध करेगा। लेकिन अणुका वह धर्म नहीं है। धर्म तो एक ही है। अहिंसाके मानी हैं मोक्ष। और मोक्ष सत्यनारायणका साक्षात्कार है। पर अणुमें पीठ दिखानेको तो कहीं अवकाश ही नहीं है। अणु विचित्र संसारमें हिंसा तो होती हो रहेगी। अणुसे बचनेका मार्ग गीता दिखाती है। लेकिन साथ साथ गीता यह भी कहती है कि कायर होकर मागनेसे तुम हिंसासे बच नहीं सकोगे। जो भागनेका विचार करता है अणुसे तो मारना चाहिये और मरना चाहिये।

प्रश्नकर्ताने जिन श्लोकोंका अल्लेख किया है अणुका रहस्य यदि अब भी अणुकी समझमें न आये, तो मैं अणुसे अधिक अणुमें समझानेमें असमर्थ हूँ। सर्वशक्तिमान् अणुका कर्ता, भर्ता और संहर्ता है और वह अणु ही होना चाहिये। अणु विषयमें तो कौन शंका नहीं होगी न? जो अणुत्पन्न करता है वह अणुका नाश करनेका अधिकार भी अपने पास रखता है। फिर भी वह किसीको नहीं मारता है, क्योंकि वह अणुत्पन्न भी नहीं करता है। नियम यह है कि जिसने जन्म लिया है अणुने मरनेके ही लिये जन्म लिया है। अणु भी अणु नियमको नहीं तोड़ता है। यह अणुकी दया है। यदि अणु ही स्वच्छन्द और स्वेच्छाचारी बन जाय तो हम सब कहां जायेंगे ?

हिन्दी नवजीवन, १५-१०-१९२५



### ३. यज्ञ

यज्ञ यानी लौकिक अथवा पारलौकिक किसी भी प्रकारके फलकी आकांक्षा रखे बिना दूसरोंके हितार्थ किया गया कर्म। 'कर्म' शब्दका अुपयोग यहां व्यापकसे व्यापक अर्थमें लेना चाहिये; उसमें कायिक, मानसिक और वाचिक - प्रत्येक प्रकारके कर्मका समावेश माना जाना चाहिये। 'दूसरों' से केवल मनुष्य-वर्गका नहीं बल्कि जीवमात्रका आशय है। अिसलिअे और अहिंसाकी दृष्टिसे भी, मनुष्य-जातिकी सेवाके लिअे ही क्यों न हो, दूसरे जीवोंकी बलि देना या अुनका नाश करना यज्ञ नहीं कहा जा सकता। वेदादिमें पशुबलिका जो विधान किया गया बताया जाता है, वह हमारे अुपरोक्त अर्थकी दृष्टिसे अनुचित है। कारण, पशुबलि सत्य और अहिंसाकी बुनियादी कसौटी पर खरी नहीं अुतरती। मैं वेदका अर्थ करनेकी अपनी अयोग्यता निस्संकोच स्वीकार करता हूं। लेकिन जहां तक अिस विषयका सम्बन्ध है, अपनी अिस अयोग्यता पर मुझे कोई खेद नहीं होता। क्योंकि वैदिक समाजमें पशुबलिके रिवाजका प्रचलित होना सिद्ध कर दिया जाय, तो भी अहिंसाका अुपासक अुसे अनुकरणीय नहीं मान सकता।

यज्ञकी अुपरोक्त व्याख्याके अनुसार जिस कर्मसे ज्यादासे ज्यादा जीवोंका और ज्यादासे ज्यादा विशाल क्षेत्रमें कल्याण हो और जिसे ज्यादासे ज्यादा स्त्री-पुरुष बहुत आसानीसे कर सकें, अुस कर्मको अुत्तम यज्ञ कहा जायगा। अिसलिअे तथाकथित अुच्चतर ध्येयके लिअे भी किसी दूसरेका अकल्याण सोचना या करना महायज्ञ होना तो दूर, यज्ञ भी नहीं है। और गीता सिखाती है तथा हमारा अनुभव बतलाता है कि यज्ञरूप कर्मके सिवा दूसरे कर्म मनुष्यको बंधनमें बांधते हैं।

अैसे यज्ञके अभावमें जगत अेक क्षणके लिअे भी टिक नहीं सकता और अिसीलिअे गीता दूसरे अध्यायमें ज्ञानका विवेचन करनेके बाद तीसरे अध्यायमें अुसकी प्राप्तिके अुपायोंका वर्णन करती है और स्पष्ट शब्दोंमें कहती है कि यज्ञके साथ ही प्रजाकी सृष्टि हुआ है। अिसलिअे यह शरीर हमें सारी सृष्टिकी सेवाके लिअे ही दिया गया है। और यही कारण है कि गीता कहती है: 'जो यज्ञ किये बिना खाता है वह चोरीका अन्न खाता है।' शुद्ध जीवन जीनेकी अिच्छा रखनेवाले



व्यक्तिका हरअेक कर्म यज्ञरूप होना चाहिये। हमारा जन्म यज्ञके साथ हुआ है, अिसलिअे हमारी स्थिति जीवन-भर अृणीकी रहती है और अिसलिअे हम हमेशां जगतकी सेवा करनेके लिअे बंधे हुअे हैं। और जिस तरह कोई गुलाम अपने स्वामीसे, जिसकी वह सेवा करता है, अन्न-वस्त्रादि पाता है, अुसी तरह हमें भी जगतका स्वामी जो कुछ दे अुसे आभारपूर्वक स्वीकार कर लेना चाहिये। अुसमें हमें जो कुछ मिले वह अुसका हमें दिया हुआ दान है; क्योंकि अृणीकी तरह अपने कर्तव्यका पालन करनेके लिअे हम अुसके अेवजमें कुछ भी पानेके अधिकारी नहीं हैं। अिसलिअे यदि हमें वह न मिले तो हम स्वामीको दोष नहीं दे सकते। हमारा शरीर अुसका है; अुसे वह अपनी अिच्छाके अनुसार चाहे रखे, चाहे न रखे। यह स्थिति अैसी नहीं है कि अुसकी शिकायत की जाय या अुस पर खेद किया जाय। अुलटे, यदि विधाताके विधानमें हमारा अपना स्थान हम समझ लें तो हमें वह स्थिति स्वाभाविक, सुखद और अिष्ट मालूम होगी। अिस परम सुखका अनुभव करनेके लिअे अविचल श्रद्धाकी आवश्यकता है। 'अपने विषयमें कोई चिंता मत करो, सब चिंताअें परमेश्वरको सौंप दो' - यह आदेश सब धर्मोंमें दिया गया दीखता है।

अिससे किसीको डरनेका कोई कारण नहीं है। जो स्वच्छ मनसे सेवाकार्यमें लग जाता है अुसे अुसकी आवश्यकता दिन-प्रतिदिन स्पष्ट होती जाती है और अुसकी श्रद्धा भी अुसी प्रमाणमें बढ़ती जाती है। जो स्वार्थ छोड़नेके लिअे और मनुष्य-जन्मके साथ मिले हुअे अिस कर्तव्यका पालन करनेके लिअे तैयार नहीं है, वह सेवामार्ग पर नहीं चल सकता। जाने-अनजाने हम सब कुछ-न-कुछ निःस्वार्थ सेवा करते ही है। यही सेवा हम विचारपूर्वक करने लगे तो हमारी पारमार्थिक सेवाकी वृत्ति अुत्तरोत्तर बढ़ती जाये; और न केवल हमें सच्चे सुखकी प्राप्ति हो, परन्तु जगतका भी कल्याण हो।

केवल संतों या सज्जनोंकी ही पूंजी परोपकारके लिअे है, अैसी बात नहीं है; मनुष्य-मात्रकी, हम सबकी पूंजी भी परोपकारके लिअे, मानव-जातिकी सेवाके लिअे ही है। और यदि अैसा है तो जीवनमें फिर भोंगका कोअी स्थान नहीं रहता और वह त्यांगमय बनता है। त्यागका कर्तव्य ही मनुष्यकी विशेषता है; पशुसे अुसके भेदका सूचक है।



कुछ लोग आक्षेप करते हैं कि जीवनका ऐसा अर्थ किया जाय तो जीवन शुष्क और निरस बन जाता है और गृहस्थ-जीवनके लिए फिर अुसमें गुंजाअिश नहीं रहती । लेकिन त्यागका अर्थ यहां संसारको छोड़कर अरण्यमें वास करना नहीं है। अुसका अर्थ यह है कि जीवनकी तमाम प्रवृत्तियोंमें त्यागकी भावना होनी चाहिये। कोअी गृहस्थ जीवनको भोगरूप न मानकर कर्तव्यरूप माने तो अिससे अुसका गृहस्थपन मिट नहीं जाता। यज्ञाथे व्यापार करनेवाला व्यापारी करोड़ोंका व्यापार करते हुअे भी लोक-सेवाका ही विचार करेगा। वह किसीको धोखा नहीं देगा, सट्टा नहीं करेगा, सादगीसे रहेगा, किसी जीवको कष्ट नहीं देगा और किसीका नुकसान करनेके बजाय खुद करोड़ोंका नुकसान सह लेगा। कोअी यह कहकर अिस बातकी हंसी न अुड़ाये कि अैसा व्यापारी केवल मेरी कल्पनामें है। दुनियाका सौभाग्य है कि अैसे लोग पूर्वमें भी हैं और पश्चिममें भी हैं। यह सच है कि अैसे व्यापारी अुंगलियों पर गिने जा सकते हैं, लेकिन यदि अुक्त आदर्शको प्रकट करनेवाला अेक भी जीवित नमूना हो तो फिर अुसे काल्पनिक नहीं कह सकते। अिसमें सन्देह नहीं कि अैसे याज्ञिक अपना धंधा करते हुअे अपनी आजीविका भी कमाते हैं। लेकिन वे धंधा आजीविकाके लिअे नहीं करते, आजीविका अुनके धंधेका गौण फल है। यज्ञमय जीवन कलाकी पराकाष्ठा है; अुसीमें सच्चा रस और आनन्द है। जो यज्ञ बोझरूप मालूम हो वह यज्ञ नहीं है। जिस त्यागसे कष्ट मालूम हो वह त्याग नहीं है। भोग नाशकी ओर ले जाता है और त्याग अमरताकी ओर । रस कोअी स्वतंत्र वस्तु नहीं; वह तो हमारी वृत्तिमें है। किसीको नाटकके परदों पर चित्रित दृश्योंमें रस मिलता है, तो दूसरेको आकाशमें प्रगट होनेवाले नित्य-नये दृश्योंमें। अिसलिअे रस वैयक्तिक और राष्ट्रीय तालीमका विषय है। हमें बचपनमें जिन चीजोंमे रस लेना सिखाया गया हो अुनमें ही हमें रस मिलता है। और किसी अेक राष्ट्रकी प्रजाको जो वस्तु रसमय मालूम होती है, वही किसी दूसरे राष्ट्रकी प्रजाको रसहीन मालूम होती है। अिस बातके अुदाहरण तो आसानीसे दिये जा सकते हैं।

फिर, यज्ञ करनेवाले कअी सेवक अैसा मानते हैं कि हम निष्काम-भावसे सेवा करते हैं, अिसलिअे हमें लोगोंसे जो चाहिये और जो नहीं चाहिये सो भी लेनेकी छूट है। यह विचार सेवकके



मनमें ज्यों ही आता है त्यों ही वह सेवक नहीं रह जाता; तब वह मानो अत्याचारी शासक बन जाता है।

जो सेवा करना चाहता हो, उसे अपनी सुविधाओंका विचार नहीं करना चाहिये। अपनी सुविधाओंका विचार तो वह अपने स्वामीको - अश्वरको सौंप देता है। अश्वरकी अिच्छा होगी तो वह देगा, न होगी तो नहीं देगा । अिसलिअे सेवक जो कुछ उसे मिले सो सब अपने अुपयोगके लिअे नहीं रख लेगा; अपने लिअे वह अुसमें से अुतना ही लेगा जितनेकी अुसे सचमूच जरूरत है। बाकीका वह त्याग करेगा। अुसे असुविधाअें अुठानी पड़ें तो भी वह शांत रहेगा, क्रोध नहीं करेगा और अपना चित्त स्वस्थ रखेगा। अुसकी सेवाका बदला सेवा करनेका सुख ही है और अुसीमें वह सन्तोष मानेगा।

सेवाकार्यमें किसी तरहकी लापरवाही या देर नहीं चर सकती। जो आदमी यह समझता है कि सावधानी और परिश्रमकी आवश्यकता तो सिर्फ अपना व्यक्तिगत कार्य करनेमें है, निःशुल्क किया जानेवाला सार्वजनिक कार्य अपनी सुविधाके अनुसार जब करना हो तब और जिस तरह करना हो अुस तरह किया जा सकता है, कहना चाहिये कि वह यज्ञका क-ख-ग भी नहीं जानता । दूसरोंकी स्वेच्छापूर्वक की जानेवाली सेवा अपनी पूरी शक्ति द्वारा की जानी चाहिये; यह सेवा पहले और अपना निजी कार्य बादमें - सेवकका सूत्र यही होना चाहिये। सारांश यह कि शुद्ध यज्ञ करनेवालेका अपना कुछ बाकी नहीं रहता; वह सब कृष्णार्पण कर देता है।

फ्रॉम यरवडा मन्दिर, अध्याय १४-१५



## ४. गीताकी केन्द्रीय शिक्षा

“गीताका मुख्य उपदेश क्या है — अनासक्ति या अहिंसा?”

“अनासक्ति ही है । आप सब जानते होंगे कि गीताके मेरे भाषांतरका नाम मैंने ‘अनासक्तियोग’ रखा है। अनासक्ति अहिंसासे आगे जाती है। जिसे अनासक्त होना है उसके लिये यह ज्यादाज रूरी कि वह अहिंसा सीख ले और उसका पालन करे। जिसके माने यह हुअे कि अनासक्तिके गर्भमें अहिंसा आ जाती है, उससे आगे नहीं बढ़ती।”

“तो क्या गीता हिंसा-अहिंसा दोनों सिखाती है?”

“मैंने तो गीतामें वह ध्वनी नहीं पायी है। यह मुमकिन है कि अहिंसा सिखानेके लिये वह न लिखी गयी हो। परन्तु जैसे किसी काव्यका भाष्य करनेवाला उसके अनेक अर्थ निकालता है, वैसे ही मैंने गीताका यह अर्थ निकाला है कि अगरचे उसका मुख्य उद्देश्य अनासक्ति है, तो भी उसमें अहिंसाकी शिक्षा अवश्य दी गयी है। अहिंसा तो लौकिक वस्तु है। परलोकमें हिंसा-अहिंसाका प्रश्न ही नहीं उठता।”

“लेकिन अर्जुनने तो हिंसा-अहिंसाका प्रश्न आठाया ही था न?”

यदि मामप्रतीकारंमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।

धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥

श्रीकृष्णने जिसके जवाबमें उसे साफ साफ कहा कि हिंसा करो।”

“अर्जुनका वह निरा प्रज्ञावाद था। श्रीकृष्ण अर्जुनके संशयका निवारण करते हुए कहते हैं: “कल तक तो तुम दुश्मनोंको मारते ही रहे, उसमें तुमको कोयी हिचकिचाहट नहीं हुयी। आज भी तुम उनको मारोगे, अगर वे तुम्हारे अपने लोग या रिश्तेदार न हों। लेकिन आज तुम्हारे आगे सवाल यह है कि स्वजनोंको कैसे मारें?” जिससे साफ जाहिर होता है कि सवाल हिंसा-अहिंसाका था ही नहीं, सवाल स्वजनोंको मारने और न मारनेका था।”

हरिजनसेवक, १४-९-१९४०



## अभय

गीताका हर पाठक जानता है कि सोलहवें अध्यायमें देवी सम्पत्तिके लक्षणोंकी जो सूची दी गयी है, उसमें सबसे पहले 'अभय' का अुल्लेख किया गया है। 'अभय' को यह श्रेष्ठ स्थान विचारपूर्वक दिया गया है या छंदमें शब्दोंके संतुलनकी आवश्यकताके कारण वह उसे संयोगवशात् मिल गया है, उसकी चर्चा मैं नहीं कर सकता। लेकिन मेरी रायमें अभय-गुणमें, उसे संयोगसे ही सही जो प्रथम स्थान दिया गया है—अुसकी पूरी पात्रता अवश्य है। अभय दूसरे सारे सद्गुणोंके विकासकी जरूरी शर्त है। अभयके अभावमें कोअी सत्यकी खोज या प्रेमका अभ्यास कैसे कर सकता है? जैसा प्रीतम कविने कहा है: 'हरिनो मारग छे शूरानो, नहीं कायरनुं काम जोने' - हरिका मार्ग शूरोंके लिअे है, अुसमें कायरोंका काम नहीं है। यहां 'हरि' शब्दका अर्थ सत्य ही है और शूर वे लोग नहीं हैं जिनके पास तलवार या बन्दूक है, बल्कि वे हैं जो अभय-गुणसे युक्त हैं। तलवार और बन्दूक या अिसी तरहके दूसरे हथियार तो कायर बांधते हैं।

यंग इण्डिया, ११-९-१९३०

## कर्मयोगका सिद्धान्त

अुस दिन अेक सज्जनने गांधीजीसे पूछा कि कर्मयोग पर आपका अनुचित आग्रह न सही, पर क्या आप अुस पर जरूरतसे ज्यादा जोर नहीं दें रहे हैं? गांधीजीने अिसका यह जवाब दिया, " नहीं, यह बात बिलकुल नहीं। मैंने जो कहा है अुसका हमेशा वही अर्थ लिया है। अिसमें कोई अत्युक्ति नहीं। कर्मयोग पर जरूरतसे ज्यादा जोर देनेकी बात तो कभी हो ही नहीं सकती। मैं तो गीतामें भगवानने जो यह कहा है केवल अुसीको दोहरा रहा हूं कि :

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

अर्थात्, यदि मैं सतत जाग्रत रहकर कर्म न करूं, तो तमाम मनुष्य मेरा अनुकरण करने लग जायंगे।



“क्या मैंने व्यवसायी लोगोंसे यह प्रार्थना नहीं की कि वे खुद चरखा चलाकर हमारे तमाम देशवासियोंके सामने अक सुन्दर अुदाहरण रखें ?”

“भगवान बुद्धकी तरह आपको कोअी मनुष्य मिले तो क्या अुससे भी आप यही बात कहेंगे?”

“अवश्य, अिसमें मुझे जरा भी हिचकिचाहट नहीं होगी।”

“तो फिर तुकाराम और ज्ञानदेव-जैसे महान सन्तोंके विषयरमें आप क्या कहेंगे?”

“अुनके सम्बन्धमें विवेचन करनेवाला मैं कौन होता हूं?”

“पर बुद्धके सम्बन्धमें आप अैसा करेंगे?”

“मैंने अैसा तो कभी नहीं कहा। मैंने तो सिर्फ यह कहा है कि अगर बुद्धकी कोटिके किसी मनुष्यसे प्रत्यक्ष मिलनेका मुझे सद्भाग्य प्राप्त हो, तो मैं अुससे यह कहनेमें जरा भी संकोच न करूंगा कि वह ध्यानयोगके बदलेमें कर्मयोगका अुपदेश करे। अिन महान सन्तोंसे यदि मेरा मिलना हो, तो अुनसे भी मैं यही बात कहूंगा।”

हरिजनसेवक, २-११-१९३५





## ५. हिन्दू धर्ममें गीताका स्थान

'अनासक्तियोग' के नामसे मैंने गीताका जो अनुवाद किया है, उसकी प्रस्तावनामें मैंने स्वीकार किया है कि गीता अहिंसाका प्रतिपादन करने अथवा युद्धका निषेध करनेके लिये लिखा गया ग्रंथ नहीं है। हिन्दू धर्म आज जिस रूपमें पाला जाता है या भूतकालमें कभी भी पाला गया है, उसमें युद्धका वैसा विरोध नहीं है जैसा कि मैं करता हूं। मैंने गीताके सम्पूर्ण उपदेश और हिन्दू धर्मके सार अंशका एक नया किन्तु स्वाभाविक और तर्कशुद्ध अर्थ किया है। दूसरे धर्मोंकी बात जाने दें, लेकिन हिन्दू धर्मके विषयमें यह अवश्य कहा जा सकता है कि उसका निरंतर विकास हो रहा है और कुरान या बाइबिलकी तरह उसकी कोई एक धर्मपुस्तक नहीं है। उसकी धर्मपुस्तकोंका भी विकास होता जा रहा है और उनमें वृद्धि हो रही है। गीता स्वयं इस बातका उदाहरण है। उसने कर्म, संन्यास, यज्ञ आदि शब्दोंको नया अर्थ दिया है। उसने हिन्दू धर्ममें नये प्राणोंका संचार किया है। उसने कर्मका एक मौलिक नियम प्रस्तुत किया है। गीताने जो कुछ कहा है वह पूर्ववर्ती ग्रंथोंमें गर्भित नहीं था ऐसी बात नहीं है। लेकिन जो वस्तु उन ग्रंथोंमें गर्भित थी उसे गीताने स्पष्ट शब्दोंमें मूर्त रूपमें रख दिया है। दुनियाके दूसरे धर्मोंके अध्ययनके प्रकाशमें और उससे भी ज्यादा गीतामें हिन्दू धर्मका जो उपदेश पाया जाता है उसे अपने आचरणमें अतारनेका प्रयत्न करते हुए प्राप्त अनुभवके प्रकाशमें मैंने हिन्दू धर्मको ज्यादा व्यापक अर्थ देनेकी कोशिश की है। और यह व्यापक अर्थ देनेकी कोशिशमें मैंने उसे कहीं तोड़ा-मरोड़ा नहीं है। यहां हिन्दू धर्मसे मेरा मतलब धर्मग्रंथोंके ढेरमें दबे हुए हिन्दू धर्मसे नहीं बल्कि उस जीते-जागते धर्मसे है, जो मां जिस तरह अपने पीड़ित बच्चेसे बोलती और प्रबोध देती है उसी तरह बोलता और प्रबोध देता है। मैंने जो किया है उसे इतिहासका पूरा समर्थन प्राप्त है। मैं हमारे पूर्वजोंके चरण-चिह्नों पर ही चला हूं। किसी समय वे कुपित देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये यज्ञमें पशुओंकी बलि दिया करते थे। उनके बाद आनेवाले हमारे पूर्वजोंने 'यज्ञ' का भिन्न अर्थ किया; उन्होंने बताया कि यज्ञमें हमें अपने काम-क्रोधादि विकारोंकी आहुति देनी चाहिये और उसका अद्देश्य किन्हीं कुपित देवताओंको नहीं, बल्कि एक अन्तर्यामी अश्वरको प्रसन्न करना है। मैं मानता हूं कि गीताकी शिक्षा अन्ततः निश्चयपूर्वक शान्ति या अहिंसाके पक्षमें है और सो भी इस हद तक कि



प्राण देकर भी अिस धर्मका पालन किया जाय। और यही मनुष्य-जातिकी अुंचीसे अुंची आकांक्षा है।

जैसा कि अुनकी अंतरंग समीक्षासे सिद्ध होता है, महाभारत और रामायण—ये दो ग्रंथ, जिन्हें करोड़ों हिन्दू अपने मार्गदर्शकके रूपमें स्वीकार करते हैं, निश्चय ही रूपक हैं। बहुत संभव है कि अुनमें अैतिहासिक व्यक्तियोंके चरित्रका आलेखन हुआ हो, लेकिन अुससे मेरी बातमें कोई फर्क नहीं पड़ता। दोनों महाकाव्य दैवी और आसुरी बलोंके बीच होनेवाले सनातन संग्रामका वर्णन करते हैं। जो भी हो, मैं अिस बातसे अिनकार करता हूं कि मैंने हिन्दू धर्मको अथवा गीताके अर्थको अपने पूर्व-कल्पित विचारोंसे अुसका मेल सिद्ध करनेके लिअे तोड़-मरोड़कर पेश किया है। मेरे विचार गीता, रामायण, महाभारत, अुपनिषद् आदिके अध्ययनसे ही फलित हुए हैं।

हरिजन, ३-१०-१९३६



## ६. गीता पर दो प्रवचन

[ नीचे दिये गये दो प्रवचन गांधीजीने साबरमती आश्रमके आश्रम-वासियोंको यरवडा जेलसे भेजे थे। ]

### १. भक्तियोग

मैं जब भी अपनेको कठिनाइियोंमें फंसा हुआ पाता हूं, तभी गीता-माताके पास दौड़ा जाता हूं और आज तक मुझे आश्वासन देनेमें वह कभी चूकी नहीं है। सम्भव है कि जो लोग गीतासे आश्वासन प्राप्त करते हैं अन्हें अगर इस बातकी जानकारी मिले कि मैं गीतासे दिन-प्रतिदिन क्या बोध लेता हूं, तो अन्हें और ज्यादा मदद मिले और यह भी संभव है कि अन्हें कुछ नया प्रकाश मिले।

आज मैं गीताके बारहवें अध्यायका सार देना चाहता हूं। इस अध्यायमें भक्तियोगका वर्णन हुआ है। विवाह-संस्कारमें हम दम्पतीसे जिन पांच यज्ञोंका अनुष्ठान करवाते हैं, उनमें से एक यज्ञके रूपमें यह अध्याय कण्ठ करनेके लिए और उसका मनन करनेके लिए कहते हैं। भक्तिके अभावमें ज्ञान और कर्म निःसत्त्व होते हैं और बंधनरूप भी हो सकते हैं। इसलिये गीताका यह मनन हम भक्तिमय हृदयसे करेंगे।

अर्जुन भगवानसे प्रश्न करता है: “साकारकी उपासना करनेवाले और निराकारकी उपासना करनेवाले भक्तोंमें से ज्यादा अच्छा कौन है?” इस प्रश्नका उत्तर देते हुए भगवान कहते हैं: “जो मेरे साकार रूपका श्रद्धापूर्वक मनन करते हैं, उसमें लीन होते हैं, वे श्रद्धालु मेरे भक्त हैं। लेकिन जो निराकार तत्त्वको भजते हैं और उसका भजन करनेके लिए इन्द्रियोंका संयम करते हैं, सब जीवोंके प्रति समभाव रखते हैं, उनकी सेवा करते हैं, किसीको अंचा या नीचा नहीं समझते, वे भी मुझे पाते हैं।”

इसलिये यह तो नहीं कहा जा सकता कि अिनमें से कोआी एक दूसरेसे श्रेष्ठ है। लेकिन यह जरूर कहा जा सकता है कि शरीरधारीके लिए निराकारकी भक्ति पूरी तरह करना शक्य नहीं



है। निराकार निर्गुण है और जिसलिए मनुष्यकी कल्पनासे परे है। अतः सब देहधारी जाने-अनजाने साकारके ही भक्त हैं।

“जिसलिए”, भगवान कहते हैं, “तू अपना मन मेरे साकार विश्व-रूपमें ही लीन कर। अपना सर्वस्व उसके चरणोंमें धर दे। यदि ऐसा न कर सकता हो तो चित्तके विकारोंको रोकनेका अभ्यास कर। यम-नियमादिका पालन करके, प्राणायाम, आसन, आदिकी मदद लेकर मनको नियंत्रणमें ला। यह भी न कर सके तो अपने सब काम ऐसी निष्ठासे कर कि तू जो कुछ करता है सब मेरे लिए ही करता है। जिस तरह तेरा मोह और तेरी आसक्ति मिटेगी और धीरे-धीरे तू निर्मल और शुद्ध होता जायगा। तेरे हृदयमें भक्तिरसका आविर्भाव होगा। लेकिन यदि तू ऐसा भी न कर सके तो अपने कर्मोंके फलका त्याग कर, यानी फलकी अिच्छाका त्याग कर दे। तेरे हिस्से जब जो काम आ पड़े सो कर। मनुष्य अपने कर्मके फलोंका स्वामी नहीं हो सकता। फलका अुदय अनेक कारणोंके योगसे होता है। जिसलिए तू केवल निमित्तमात्र बन जा। मैंने तुझे ये जो चार पद्धतियां बतायीं जिनमें से किसीको किसीसे नीची या अंची मत मान। जिनमें से तुझे जो अनुकूल मालूम हो उसीका अपने भक्तिके अभ्यासमें तू अुपयोग कर।

“ऐसा मालूम होता है कि अूपर मैंने यम-नियम, प्राणायाम, आसन आदिका जो मार्ग बताया है उसकी अपेक्षा श्रवण, मनन आदिका मार्ग ज्यादा आसान हो; उसकी अपेक्षा अुपासनारूप ध्यान ज्यादा आसान हो और ध्यानकी अपेक्षा कर्मफल-त्याग ज्यादा आसान हो। सब लोगोंके लिए अेक ही पद्धति समान रूपसे आसान नहीं होती; और किसी-किसीको तो सभी पद्धतियोंकी मदद लेनी पड़ती है। ये सब पद्धतियां अेक-दूसरेसे स्वतंत्र भी नहीं हैं; आपसमें मिली हुई हैं। तुझे तो किसी तरह भक्त बनना है; जिस मार्गसे भक्ति सधती दीखे, उसी मार्गका तू अवलम्बन कर। भक्त किसे कहा जाय, यह मैं तुझे बता देता हूं। भक्त किसीका द्वेष नहीं करता, किसीके प्रति वैरभाव नहीं रखता, जीवमात्रके लिए मैत्रीका भाव धारण करता है और सबके लिए करुणाका भाव रखता है। ऐसा करनेके लिए वह ममताका त्याग करता है, अहंभावका नाश कर शून्यवत् बन जाता है। वह सुख-दुःखको समान मानता है। वह अपने दोषोंके लिए



दुनियासे क्षमा चाहता है और स्वयं भी अपना अहित करनेवालोंको क्षमा करता है। वह सन्तुष्ट रहता है, अपने शुभ निश्चयों से कभी डिगता नहीं, वह अपना मन, अपनी बुद्धि, अपना सर्वस्व मुझे ही समर्पित करता है। वह कभी लोगोंको डराता नहीं और न वह लोगोंसे डरता है। मेरा भक्त हर्ष, शोक, मय आदिसे मुक्त होता है। उसे किसी प्रकारकी अिच्छा नहीं होती, वह पवित्र और कुशल होता है। वह महत्त्वाकांक्षासे प्रेरित होकर बड़े-बड़े उपक्रम नहीं करता। शुभ और अशुभ, दोनों परिणामोंका त्याग करके - यानी अुनके विषयमें निश्चिन्त रहकर वह अपने निश्चयोंका पालन करता है। उसका न कोअी शत्रु होता है, न मित्र । वह मान और अपमानके परे होता है।

“वह तो मौनपूर्वक, जो मिले अुससे ही सन्तोष मानते हुअे, अिस तरह विचरता है, मानो अकेला हो और किसी भी स्थितिमें स्थिर रहता है। जो श्रद्धावान होकर अिस तरह रहता है, वह मेरा प्रिय भक्त है।”

यंग इण्डिया, १३-११-३०

## २. अर्जुन-विषाद-योग

गीता महाभारतका अेक छोटासा हिस्सा है। महाभारत अैतिहासिक ग्रंथ माना जाता है, लेकिन हम महाभारत और रामायण दोनोंको अैतिहासिक ग्रंथ नहीं, धर्मग्रंथ मानते हैं। अथवा अुन्हें अितिहास कहें तो वे आत्माके अितिहास हैं। अुनमें हजारों वर्ष पहले क्या हुआ था अिस बातका नहीं, बल्कि प्रत्येक मनुष्यके अन्तरमें आज क्या हो रहा है अिसका वर्णन है। महाभारत और रामायण दोनोंमें देव और असुर, राम और रावणमें रोज चल रही लड़ाअीका वर्णन है। गीतामें कृष्ण और अर्जुनका संवाद अैसा ही अेक वर्णन है। 'गीता' शब्दका अर्थ है 'गायी हुअी' । यहां अुपनिषद् शब्द जोड़ लेना चाहिये । दोनों शब्दोंका सम्मिलित शाब्दिक अर्थ हुआ 'गायी हुअी अुपनिषद्' । अुपनिषद् शब्दका अर्थ है ज्ञान या बोध । अिसलिअे गीताका अर्थ हुआ श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुनको दिया हुआ बोध । हमें गीता यह समझकर पढ़नी चाहिये कि हमारे हृदयमें अंतर्यामी भगवान श्रीकृष्ण सदा विराजमान हैं और हम जब भी धर्म-संकटमें अर्जुनकी भांति जिज्ञासु बनकर अिस अंतर्यामी भगवानकी शरण लेते हैं, वह हमेशा हमें शरण देनेको तैयार रहता है। हम सो रहें



है, अंतर्यामी नित्य जाग रहा है। वह हमेशा जिस बातकी राह देखता रहता है कि हममें जिज्ञासा जाग्रत हो। पर हमें प्रश्न पूछना नहीं आता, प्रश्न करनेका मन भी नहीं होता। इसीलिए हम प्रतिदिन गीता-जैसी पुस्तकका मनन करते हैं। उसका मनन करते हुए हम अपनेमें धर्म-जिज्ञासा पैदा करना चाहते हैं। और जब जब हम संकटमें होते हैं तब-तब अपने संकटके निवारणके लिए गीताके पास दौड़े जाते हैं और उससे आश्वासन प्राप्त करते हैं। हमें गीता इस दृष्टिसे पढ़नी है। गीता हमारे लिए सद्गुरु-रूप है, माता-रूप है और हमें यह विश्वास होना चाहिये कि उसकी गोदीमें सिर रखनेसे हम हमेशा सुरक्षित रहेंगे। गीता हमारी सारी धार्मिक अलङ्गनं सुलझायेगी। जो रोज इस तरह गीताका मनन करेगा, उसे उसमें से रोज तया आनन्द मिलेगा, नये-नये अर्थ मिलेंगे। ऐसी कोअी धार्मिक अलङ्गन नहीं है जिसे गीता न सुलझा सके। अपनी अपर्याप्त श्रद्धाके कारण हम उसे ठीक तरहसे पढ़ना और समझना न जानें, यह दूसरी बात है। हमारी श्रद्धा लगातार बढ़ती रहें और हम जाग्रत बने, इसीलिए हम प्रतिदिन गीताका पारायण करते हैं। इस तरह गीताका मनन करते हुए मुझे जो अर्थ मिले हैं और आज भी मिल रहे हैं, उनका सार आश्रमवासियोंकी मददके लिए मैं यहां देता हूं।

पांडव और कौरव अपनी अपनी सेनाओं लेकर कुरुक्षेत्रकी युद्धभूमिमें खड़े होते हैं, उस समय दुर्योधन द्रोणाचार्यके समक्ष दोनों पक्षोंके मुख्य योद्धाओं का वर्णन करता है। दोनों सेनाओं लड़ाईके लिए तैयार होती हैं, दोनों पक्षोंके योद्धा अपने शंख बजाते हैं और श्रीकृष्ण भगवान, जो अर्जुनके सारथि हैं, अपना रथ दोनों सेनाओंके मध्यमें ले जाते हैं। यह देखकर अर्जुन घबराता है और श्रीकृष्णसे कहता है: “अिनके साथ मैं कैसे लड़ सकता हूं ? कोअी दूसरे होते तो मैं अभी लड़ लेता। लेकिन ये तो स्वजन हैं, मेरे ही हैं। कौरवों और पाण्डवोंमें आखिर क्या फर्क है ? हम सब, चचेरे सही, भाअी-भाअी हैं। हम साथ ही छोटेसे बड़े हुए हैं। द्रोण केवल कौरवोंके नहीं हमारे भी आचार्य हैं। हमें भी सारी विद्या अुन्होंने ही सिखायी है। भीष्म हमारे सारे परिवारके मुख्य पुरुष हैं। अुनके साथ लड़ाई कैसी ? यह सच है कि कौरव आततायी हैं, अुन्होंने अनेक दुष्ट कर्म किये हैं, अन्याय किये हैं; पाण्डवोंकी जमीन छीन ली है, द्रौपदी-जैसी महासतीका अपमान किया है। ये सब दोष अुन्होंने किये हैं, लेकिन अुन्हें मारनेसे क्या लाभ ? वे तो मूढ़ हैं। मैं क्यों अुनके



जैसा बनूं ? मुझे कुछ ज्ञान है, सारासारका विवेक है। जिसलिअे मुझे जानना चाहिये कि अपने सगे-सम्बन्धियोंसे लड़नेमें पाप है। वे पाण्डवोंका भाग पचा गये हो तो जिससे क्या हुआ ? भले वे हमें मार डालें, लेकिन हम अपना हाथ उनके खिलाफ कैसे अुठा सकते हैं? हे कृष्ण, मैं अपने अिन स्वजनोंसे नहीं लडूंगा।” अैसा कह कर अर्जुन लड़खड़ाकर रथमें बैठ गया।

अिस तरह यह पहला अध्याय पूरा होता है। अिसका नाम अर्जुन-विषाद-योग है। विषाद यानी दुःख। जैसा दुःख अर्जुनने अनुभव किया, वैसा हम सबको अनुभव होना चाहिये। आध्यात्मिक व्याकुलता और आध्यात्मिक जिज्ञासाके बिना ज्ञान नहीं मिल सकता। क्या अच्छा है और क्या बुरा है, यह जाननेकी अिच्छा भी जिसे नहीं होती, अुसके लिअे धर्म-चर्चाका क्या मूल्य हो सकता है? कुरुक्षेत्री युद्धभूमिका अुल्लेख तो प्रसंगवश हुआ समझना चाहिये। सच्चा कुरुक्षेत्र हमारा अपना शरीर है। वह कुरुक्षेत्र भी है और धर्मक्षेत्र मी है। यदि हम अुसे अीश्वरका निवासस्थान मानें और वैसा बनायें तो वह धर्मक्षेत्र है। अिस युद्धभूमिमें हमारे सामने रोज अेक - न-अेक लड़ाअी खड़ी ही रहती है और अिनमें से अधिकांश लड़ाअियां ‘यह मेरा और यह तेरा’ के विचारोंसे ही पैदा होती हैं। स्वजन और परजनके भेदमें से ही अैसी लड़ाअियां अुपजती हैं। अिसीलिअे आगे चलकर भगवान कृष्ण अर्जुनसे कहते हैं कि अधर्म मात्रका मूल राग-द्वेषमें है। किसी वस्तुको ‘मेरी’ मानते ही राग अुत्पन्न होता है और अुसे ‘पराअी-दूसरेकी’ मानते ही द्वेष अुत्पन्न होता है, वैरमाव अुत्पन्न होता है। गीता और दुनियाके दूसरे धर्मग्रन्थ हमें पुकार-पुकार कर कहते हैं कि मेरे और तेरेका भेद भूलना चाहिये, अथवा राग और द्वेष छोड़ना चाहिये । यह कहना अेक बात है और वैसा करना दूसरी बात है। गीता हमें वैसा करनेके लिअे कहती है।

यंग इण्डिया, २०-११-१९३०



## ७. गीता-जयन्ती

मैं नहीं जानता कि जिस अद्देश्यसे ये जयन्तियां मनायी जाती हैं वह किस तरह पूरा होता है। आध्यात्मिक विषयोंमें विज्ञापनके साधारण साधनोंका स्थान नहीं होता। आध्यात्मिक वस्तुओंका अुत्तम विज्ञापन तो अुनके अनुरूप कर्म ही होता है। मेरा विश्वास है कि सभी आध्यात्मिक ग्रंथोंका प्रभाव दो बातें होनेसे पड़ता है। एक तो यह कि अुनमें लेखकोंके अनुभवोंका सच्चा अितिहास हो और दूसरे अुनके भक्तोंका जीवन यथासंभव अुनके अुपदेशोंके अनुसार रहा हो। किस प्रकार ग्रंथकार अपने ग्रंथोंमें प्राण-संचार करते हैं और अनुयायी अुनके अनुसार आचरण करके अुनका पोषण करते हैं। मेरी सम्मतिमें करोड़ों पर गीता, तुलसीकृत रामायण आदि पुस्तकोंके प्रभावका यही रहस्य है। श्री केतकरके आग्रहको माननेमें मैं यह आशा रखता हूं कि आगामी गीता-जयन्ती अुत्सवमें भाग लेनेवाले अुचित भावनासे प्रेरित होंगे और गीताके पवित्र संदेशके अनुसार अपना जीवन बनानेका दृढ़ निश्चय करेंगे। मैंने यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि गीताका संदेश आसक्ति छोड़कर स्वधर्म पालन करना ही है। मेरा यह मत रहा है कि गीताका मुख्य विषय दूसरे अध्यायमें है और अुसके अनुसार आचरण करनेकी विधि तीसरे अध्यायमें बतायी गयी है। अैसा कहनेका यह अर्थ नहीं है कि दूसरे अध्यायोंकी महिमा कम है। वास्तवमें अेक अेक अध्यायका अपना महत्त्व अलग ही है। विनोबाने गीताको 'गीतायी' अर्थात् गीतामाता कहकर पुकारा है। अुन्होंने अुसका बहुत ही सरल और अोजस्वी मराठीमें पद्यानुवाद किया है। अुसका छन्द भी वही रखा है जो मूल संस्कृतमें है। हजारोंके लिए गीता ही सच्ची माता है; क्योंकि वह कठिनाअियोंमें सांत्वना-रूपी पौष्टिक दूध देती है। मैंने अुसे अपना आध्यात्मिक कोष कहा है; क्योंकि दुःखमें मैं अुससे कभी निराश नहीं हुआ हूं। अिसके अतिरिक्त, यह अैसी पुस्तक है जिसमें साम्प्रदायिकता और धार्मिक कट्टरताका नाम भी नहीं है। यह मनुष्य-मात्रको प्ररणा देती है। मैं गीताको क्लिष्ट पुस्तक नहीं मानता। निःसन्देह पण्डितोंके हाथ तो जो भी चीज हाथ पड़ जाय अुसीमें वे गहनता देख लेते हैं। परन्तु मेरी सम्मतिमें साधारण बुद्धिके मनुष्यको भी गीताके सरल संदेशको समझ लेनेमें कोअी कठिनाअी नहीं होनी चाहिये। अिसकी संस्कृत तो अत्यन्त सरल है। मैंने गीताके कअी अंग्रेजी अनुवाद पढ़े हैं, परन्तु अेडविन आर्नोल्डके





छन्दानुवादकी तुलनाका अेक भी अनुवाद नहीं है। अुसका नाम भी अुन्होंने बहुत सुन्दर और अुपयुक्त ढंगसे 'स्वर्गीय गीत' रखा है।

हरिजनसेवक, १६-१२-१९३९



## ८. गीताके कृष्ण

रामायण और महाभारतमें प्रत्येक महान व्यक्तिके सम्बन्धमें जो कुछ कहा गया है सबको मैं शब्दशः नहीं ग्रहण करता हूं, और न मैं अिन ग्रंथोंको ऐतिहासिक ग्रन्थ मासता हूं। उनमें भिन्न भिन्न रूपोंमें आवश्यक सिद्धान्तोंका वर्णन मिलता है। और न मैं राम तथा कृष्णको अस्खलनशील - कभी गलती न करनेवाले मानता हूं, जैसा कि अिन दो महाकाव्योंसे उनका चरित्र-चित्रण मिलता है। वे अपने अपने यूगके विचारों और आकांक्षाओंको प्रतिबिम्बित करते हैं। केवल अस्खलनशील व्यक्ति ही अस्खलनशील पुरुषोंके चरित्रका यथार्थ चित्रण कर सकता है। ऐसी अवस्थामें उनका आशय केवल हमारे लिये पथदर्शकका काम दे सकता है। उनके अक्षर अक्षरका अनुकरण करनेसे हमारा दम घुटने लगेगा, और सब तरहकी अन्नति रुक जायगी। जहां तक गीतासे सम्बन्ध है, मैं उसे कोअी ऐतिहासिक संवाद नहीं मानता। आध्यात्मिक सिद्धान्त समझानेके लिये उसमें भौतिक अुदाहरण लिये गये हैं। चचेरे भाअियोंके बीच हुआ युद्धका नहीं, बल्कि मनुष्यकी सत्-प्रवृत्ति और असत्-प्रवृत्तिमें होनेवाले युद्धका वर्णन उसमें है।

हिन्दी नवजीवन, १९-३-१९२५

मुझे पता नहीं कि महाभारतका कृष्ण कभी हुआ भी था। मेरे कृष्णका किसी ऐतिहासिक व्यक्तिसे कोअी सम्बन्ध नहीं है। जो कृष्ण अपनी मानहानि होने पर हत्या करनेके लिये तत्पर हुआ बतलाया जाता है और अहिन्दू जिसका वर्णन दुराचारी युवकके रूपमें करते हैं, उसके आगे मेरा सिर न झुकेगा। मैं जिस कृष्णको मानता हूं वह तो है पूर्णावतार, पूर्ण निष्कलंक, गोताका प्रेरक तथा लाखों मनुष्य-प्राणियोंके जीवनको अनुप्राणित करनेवाला। यदि कोअी मुझे यह समझा दे कि महाभारत भी वर्तमान औतिहासिक पुस्तकोंकी तरह अेक अितिहास-ग्रंथ है, महामारतका अेक अेक शब्द प्रमाणयुक्त है और यह कि महाभारतके कृष्णने वे ही कार्य किये हैं जो कि उसके किये हुअे बताये जाते हैं, तो मैं उस कृष्णको अीश्वरका अवतार माननेके लिये तैयार न होअूंगा। फिर चाहे अिसके लिये मैं हिन्दू समाजके बाहर ही क्यों न निकाल दिया जाअूं। परन्तु महाभारत मेरी दृष्टिमें अेक गहन धार्मिक ग्रंथ है। वह अधिकांशमें अेक रूपक है। अितिहासके



साथ अुसका कोअी सम्बन्ध नहीं । अुसमें तो अुस शाश्वत युद्धका वर्णन है जो कि हमारे अन्दर निरन्तर होता रहता है। वह वर्णन अैसी सजीव भाषामें किया गया है जिससे कुछ समयके लिये हमारा यह खयाल हो जाता है कि अुसमें वर्णित कृत्य सचमुच मनुष्योंके द्वारा ही किये गये हैं। और न मैं वर्तमान महाभारतको मूल ग्रंथकी वास्तविक प्रतिलिपि मानता हूं । अिसके विपरीत मैं तो समझता हूं कि मूल महाभारतमें अब तक कअी परिवर्तन हो गये हैं।

हिन्दी नवजीवन, ॢ-१०-१९२५



## ९. कृष्ण-जन्माष्टमी : अक प्रवचन

[मैसूर राज्यमें आर्सीकेरे नामक स्थानमें कृष्ण-जन्माष्टमीके दिन मांधीजी द्वारा दिये गये व्याख्यानका सारांश।]

कृष्ण-जयन्तीका, श्रीकृष्णके जीवनका हमारे लिअे क्या अर्थ है, यह हम नहीं जानते । हम गीता न तो खुद पढ़ते हैं और न अपने बालकोंको ही पढ़ानेका प्रयत्न करते हैं।

भगवद्गीता असा असामान्य ग्रंथ है कि अुसे हरअेक धर्मका मनुष्य आदरके साथ पढ़ सकता है और अुसमें अपने धर्मके तत्त्व पा सकता है। यदि हम लोग प्रति जन्माष्टमीको श्रीकृष्ण-चरित्रका स्मरण करके और गीतापाठ करके अुसके अनुसार चलते, तो आज जैसी हमारी शोचनीय स्थिति है वैसी कभी न होती। श्रीकृष्णने हमारे सामने – सारी पृथ्वीके सामने – जो आदर्श अुपस्थित किया है, अुसके अनुसार चलनेमें कोअी बाधा नहीं होनी चाहिये। अुन्होंने सारा जीवन लौकसेवामें बिताया, लोगोंका दासत्व किया। यदि वे चाहते तो सरदार बन सकते थे, किन्तु अुन्होंने ठकुराअी बिसार दी और सारथि बनना ही पसन्द किया। अुनका सारा जीवन अखण्ड कर्मकी गीता है। संसारमें अुन्होंने बड़ेसे बड़े राजाकी भी परवाह नहीं की । अभिमानी दुर्योधनका मेवा छोड़कर विदुरकी भाजीको ही अुन्होंने पसन्द किया। बचपनसे ही वे गोसेवक थे, अिसीलिअे तो अुन्हें गोपाल कहते है । परन्तु अुनका नाम लेनेवाले हम अब मिथ्याचारी बन बैठे हैं। गोसेवा हम जानते नहीं । गायों और गोवंशकों हम लोग कष्ट देते हैं। आदि-कर्णाटक जैसे हिन्दूपनका दावा करनेवालोंकों भी गोवध करने और गोमांस खानेमें कोअी संकोच नहीं होता है। हम लोगोंने ढोरोंकी स्थिति अैसी गअी-बीती कर दी है कि हमारे बच्चोंको चाहिये अुतना दूध नहीं मिलता । रोगियोंको भी पूरा दूध नहीं मिलता । श्रीकृष्णके समयमें गोपालत होता था, अिसलिअे अुस समय दूध और मक्खनकी कोअी कमी न थी।

श्रीकृष्णमें आलस्यका नाम न था। वे तो आठों पहर सदा जाग्रत और अतंद्रित रहकर काम करनेवाले थे। हम लोग आज आलसी और प्रमादी बन गये हैं। यदि हम तन्द्राका त्याग ने कर सकें तो श्रीकृष्णाका नाम लेना निरर्थक है। मगवद्गीतामें श्रीकृष्णने भक्तिका मार्ग बताया है और अुसमें



कहा है कि मेरे निमित्त कर्म करो। लोकमान्यने यह बात स्पष्ट कर दी है कि भक्त और ज्ञानी बनना चाहो तो कर्म ही अिसका अेक मार्ग है। परन्तु भगवानने यह दिखाया है कि वह कर्म स्वार्थके वश होकर नहीं परमार्थकी दृष्टिसे करना चाहिये। स्वार्थके लिअे किया गया कर्म केवल बन्धनरूप है। यज्ञार्थ किया गया कर्म बन्धन-मुक्त करनेवाला है। अैसा वह कर्म क्या हो सकता है जो मैं करूं, तुम करो, बालक करे, बालिका करे, हिन्दू करे, मुसलमान करे और फिर भी जो पारमार्थिक कर्म हो ? मैंने यह दिखानेका प्रयत्न किया है कि कलियुगमें अैसा यज्ञार्थ कर्म केवल चरखेसे ही हो सकता हैं। अिस युगमें केवल यही अेक हमारा सुदर्शन चक्र हो सकता है, क्यौंकि अुसीके द्वारा हम लोग कर्तव्यशील बन सकते हैं, परमात्माका नाम ले सकते हैं और परमार्थ कर सकते हैं।

आप अिसे यज्ञमें अपनी तरफसे जितना हिस्सा दे सकते हों दें। भगवान श्रीकृष्णने अपने कार्यमें और गीतामें यह दिखाया है कि भक्त बनना हो तो हमें ब्राह्मण और भंगीके प्रति समबुद्धि रखनी चाहिये। यदि यह सच है तो हिन्दू धर्ममें अस्पृश्यता हो ही वहीं सकती। आप, जो अस्पृश्यतासे चिपटे हुए हैं, आज अिस पुण्यतिथि पर अुसे भूल जायें और अस्पृश्योंकी सेवा करनेकी प्रतिज्ञा करें। जो मनुष्य श्रीकृष्णाकी शरणमें जाता है, भगवद्गीताको अपना मान्य ग्रंथ समझता है, अुसके मनमें हिन्दू, मुसलमान अित्यादिका भेद नहीं रहता, और रहना भी नहीं चाहिये। मनुष्य किसी भी भावसे अीश्वरकी पूजा करे, वह श्रीकृष्णाको ही पहुंचती है। जिस भक्तियोगमें, कर्मयोगमें, प्रेममार्गमें किसी भी मनुष्यके प्रति द्वेषके लिअे स्थान नहीं है।

हिन्दी नवजीवन, ८-९-१९२७



## १०. हिन्दू विद्यार्थी और गीता

अुस दिन अेक पादरी मित्रने बातों बातोंमें मुझसे पूछा, “अगर हिन्दुस्तान सचमुच ही आध्यात्मिक देश है, तो फिर यहां पर बहुत ही थोड़े विद्यार्थी क्यों अपने धर्मको या भगवद्गीताको भी जानते हैं?” वे खुद शिक्षक हैं। अिसके समर्थनमें अुन्होंने कहा, “मैं खासकर हर विद्यार्थीस पूछता हूं कि तुम्हें अपने धर्मका या भगवद्गीताका कुछ ज्ञान है? पर अुनमें से बहुत अधिक तो अिसमें कोरे ही मिलते हैं।”

मैं यहां अिस निर्णय पर चर्चा नहीं करना चाहता कि चूंकि कुछ विद्यार्थियोंको अपने धर्मका कुछ ज्ञान नहीं है; अिसलिअे हिन्दुस्तान आध्यात्मिक दृष्टिसे अुन्नत देश नहीं है। मैं तो अितना ही कहूंगा कि विद्यार्थियोंके धर्मशास्त्र-सम्बन्धी अज्ञानसे यह निष्कर्ष निकालना जरूरी नहीं कि अुस समाजमें, जिससे वे विद्यार्थी आये हैं, धार्मिक जीवन या आध्यात्मिकता है ही नहीं। मगर अिसमें कोअी शक नहीं कि सरकारी स्कूल-कॉलेजोंसे निकले हुए अधिकतर विद्यार्थी धार्मिक शिक्षणमें कोरे ही होते हैं। पादरी साहबका अिशारा मैसूरके विद्यार्थियोंकी ओर था। मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि मैसूरके विद्यार्थियोंको राज्यके स्कूलोंमें कीअी धार्मिक शिक्षण नहीं दिया जाता। मैं जानता हूं कि अिस विचारके लोग भी मौजूद हैं जो मानते हैं कि सार्वजनिक स्कूलोंमें सिर्फ भौतिक विषयोंकी ही शिक्षा देनी चाहिये। मैं यह भी जानता हूं कि हिन्दुस्तान जैसे देशमें, जहां पर संसारके अधिकतर धर्मोंके अनुयायी मिलते हैं और जहां अेक ही धर्मके अितने भेद और अुपभेद हैं, धार्मिक शिक्षणका प्रबन्ध करना कठिन होगा। लेकिन अगर हिन्दुस्तानको आध्यात्मिकताका दिवाला नहीं निकालना है, तो अुसे धार्मिक शिक्षाको भी अन्य विषयोंके शिक्षणके बराबर ही महत्त्व देना पड़ेगा। यह सच है कि धार्मिक पुस्तकोंके ज्ञानकी तुलना धर्मसे नहीं की जा सकती। मगर जब हमें धर्म नहीं मिल सकता तब हमें अपने लड़कोंको अुससे अुतरती दूसरी अुत्तम वस्तु देकर संतोष मानना पड़ेगा। और फिर स्कूलोंमें अैसी शिक्षा दी जाय या न दी जाय, मगर सयाने लड़कोंको तो जैसे और विषयों में वैसे ही धार्मिक विषयोंमें भी स्वावलंबनकी आदत डालनी पड़ेगी। जैसे आज अुनकी वाद-विवाद समितियां या चरखा-समितियां हैं, वैसे वे आप ही अपने धार्मिक वर्ग भी खोलें।



शिमोगामें कॉलेजियट हाजीस्कूलके लड़कोंके सामने भाषण करते समय पूछने पर मुझे पता चला कि कोअी १०० हिन्दू लड़कोंमें से मुश्किलसे आठने भगवद्गीता पढ़ी थी। यह पूछने पर कि अुनमें से भी कोअी गीताका अर्थ समझता है या नहीं, अेक भी हाथ नहीं अुठा। ५-६ मुसलमान विद्यार्थियोंमें से हरअेकने कुरान पढ़ा था, मगर अर्थ समझनेका दावा तो सिर्फ अेक ही कर सका। मेरी समझमें गीता बहुत ही सरल ग्रंथ है। जरूर ही अिसमें कुछ मौलिक प्रश्न आते हैं, जिन्हें हल करना बेशक मुश्किल है। मगर गीताकी साधारण शिक्षाको न समझना असंभव है। अिसे सभी संप्रदाय प्रामाणिक ग्रंथ मानते हैं। अिसमें किसी प्रकारकी साम्प्रदायिकता नहीं है। थोड़ेमें यह संपूर्ण तर्कशुद्ध नीतिशास्त्र है। यह बुद्धि और हृदय दोनोंको सन्तुष्ट करती है। यों यह ग्रंथ दार्शनिक और भक्ति-विषयक दोनों ही हैं। अिससे सब कोअी लाभ अुठा सकते हैं। भाषा तो अिसकी अत्यन्त ही सरल है। मगर तो भी मैं समझता हूं कि हर प्रान्तीय भाषामें अिसका अेक प्रामाणिक अनुवाद होना चाहिये और वह अनुवाद अैसा हो जिससे गीताकी शिक्षा सर्वसाधारणकी समझमें आ सके । मेरी यह सलाह गीताके बदलेमें दूसरी कोअी पुस्तक रखनेकी नहीं है, क्योंकि मैं अपनी यह राय दोहराता हूं कि हर हिन्दू लड़के और लड़कीको संस्कृत जानना चाहिये। मगर अभी तो कअी जमानों तक करोड़ों आदमी संस्कृतसे कोरे ही रहेंगे। केवल संस्कृत न जाननेके कारण गीताकी शिक्षासे अुन्हें वंचित रखना तो आत्मघात करना होगा ।

हिन्दी नवजीवन, २५-८-१९२७



## ११. स्कूलोंमें गीताकी पढ़ाई

एक पत्रलेखक पूछते हैं कि क्या गीता राष्ट्रीय स्कूलोंमें सब विद्यार्थियोंको, फिर वे हिन्दू हों या मुसलमान, अनिवार्य रूपसे पढ़ायी जा सकती है ? दो वर्ष पूर्व जब मैं मैसूर राज्यका दौरा कर रहा था, उस समय प्रसंगवश मैंने जिस बात पर दुःख प्रगट किया था कि एक हाईस्कूलके विद्यार्थियोंको गीताकी कोअी जानकारी नहीं थी। जिस तरह गीताकी पढ़ाई के प्रति मेरा पक्षपात है ही; और मैं तो चाहूंगा कि उसकी व्यवस्था न केवल राष्ट्रीय स्कूलोंमें हो, बल्कि तमाम शिक्षा-संस्थाओंमें हो। किसी हिन्दू लड़के या लड़कीको गीताकी जानकारी न होना लज्जास्पद माना जाना चाहिये लेकिन यहां आकर मेरा आग्रह रुक जाता है; उसकी अनिवार्य पढ़ाईका समर्थन, खासकर राष्ट्रीय स्कूलोंमें, मैं नहीं कर सकता। यह सही है कि गीता विश्वधर्मका ग्रंथ है, लेकिन यह ऐसा दावा है जो किसी पर जबरदस्ती नहीं थोपा जा सकता । कोअी अीसाअी, मुसलमान या पारसी जिस दावेको माननेसे अिनकार कर सकता है या ऐसा ही दावा बाअिबल, कुरान या अवेस्ताके पक्षमें पेश कर सकता है। मुझे भय है कि गीताकी पढ़ाई अुन सब लोगोंके लिअे भी अनिवार्य नहीं की जा सकती, जिनका समावेश हिन्दू समाजमें किया जाता है। कितने ही सिख और जैन अपनेको हिन्दू मानते हैं, लेकिन संभव है कि अपने लड़कों और लड़कियोंके लिअे गीताकी अनिवार्य पढ़ाईका वे विरोध करें । अलबत्ता, वर्ग-विशेषके लिअे चलनेवाले स्कूलोंकी स्थिति अलग है। अुदाहरणके लिअे, वैष्णवोंका कोअी स्कूल धार्मिक शिक्षाके अंगके रूपमें गीताकी पढ़ाई चलावे, तो मैं अुसे बिलकुल अुचित समझूंगा। हरएक खानगी स्कूलको अपना विशेष शिक्षाक्रम ठहराने और चलानेका अधिकार है। लेकिन राष्ट्रीय स्कूलको कुछ निर्धारित सीमाओंके भीतर काम करना पड़ता है। जहां किसीके अधिकारमें बाधा न आती हो, वहां जबरदस्तीका सवाल नहीं अुठता। कोअी व्यक्ति किसी खानगी स्कूलमें दाखिल होनेके अधिकारका दावा नहीं कर सकता, लेकिन राष्ट्रके प्रत्येक व्यक्तिका राष्ट्रीय स्कूलमें प्रवेश पानेका अधिकार तो मानना पड़ेगा। पहले अुदाहरणमें जो चीज प्रवेशकी शर्त मानी जायगी, वही दूसरे अुदाहरणमें जबरदस्ती मानी जायगी। बाहरी जबरदस्तीके द्वारा गीता कभी विश्वव्यापी नहीं बन सकती । लेकिन यदि अुसके प्रशंसक अुसे दूसरोंके गले जबरदस्ती अुतारनेका प्रयत्न न करके





अुसकी शिक्षाको अपने जीवनमें चरितार्थ करें, तो अवश्य अुसके विश्वव्यापी प्रचारकी आशा की जा सकती है।

यंग इण्डिया, २०-६-१९२९



## १२. गीता और गिरि-प्रवचन

[अीसाअी धर्म-प्रचारकोंकी सभामें दिये गये अेक भाषणसे।]

यद्यपि अीसाअी धर्ममें बहुत-कुछ अैसा है जो मुझे अच्छा लगता है और जिसकी मैं प्रशंसा करता हूं, फिर भी प्राचीनपंथी अीसाअी धर्म (Orthodox Christianity) के साथ अेकरूप होना मेरे लिये सम्भव नहीं है। हिन्दू धर्मको मैं जिस रूपमें जानता हूं अुससे मेरी जिज्ञासु आत्माको पूरा सन्तोष मिल जाता है, अुसकी शिक्षाओं मेरे मनमें और मेरे हृदयमें छा गयी हैं और भगवद्गीता तथा अुपनिषदोंसे मुझे जो सांत्वना मिलती है, वह सांत्वना मुझे बाअिबलके प्रसिद्ध गिरि-प्रवचनसे भी नहीं मिलती। अिसका यह अर्थ नहीं कि गिरि-प्रवचनमें जो आदर्श पेश किया गया है अुसे मैं मूल्यवान नहीं मानता, या कि अुसकी बहुमूल्य शिक्षाओंमें से कुछने मेरे अुपर गहरी छाप नहीं छोड़ी है। लेकिन मुझे आपके सामने यह स्वीकार करना चाहिये कि जब मेरा मन संदेहोंके कुहासे से घिर जाता है या मेरी आंखोंके आगे निराशाका अंधेरा छा जाता है, जब मुझे क्षितिज पर प्रकाशकी अेक भी किरण दिखाअी नहीं देती, अुस समय मैं भगवद्गीताका सहारा लेता हूं; अुसमें मुझे हमेशा अैसा कोअी वचन मिल जाता है, जिससे मुझे सांत्वना मिलती है और मैं तत्काल कुचल डालनेवाले दुःखके बीचमें भी मुसकुराने लगता हूं। मेरा जीवन बाहरी दुःखदायी घटनाओंसे भरा रहा है; और यदि अुन्होंने मेरे अुपर कोअी खास असर नहीं छोड़ा है, तो अिसका अेकमात्र श्रेय भगवद्गीताकी शिक्षाको है।

यंग इण्डिया, ६-८-१९२५

गीता मेरे लिये दुनियाके अन्यान्य धर्मग्रंथोंकी चाबी-जैसी बन गयी है। वह मेरे लिये अुन ग्रंथोंमें पाये जानेवाले गहनतम रहस्योंको खोल देती है। मैं अुनका वैसा ही सम्मान करता हूं जैसा कि हिन्दू धर्मग्रंथोंका । हिन्दू, मुसलमान, अीसाअी, पारसी, यहूदी आदि सब बाहरसे ओढ़े अुसे नाममात्र हैं, नसे कुछ व्यावहारिक सुविधा हो जाती है। लेकिन अिन नामोंकी छाप दूर कर दी जाय तो मेरी समझमें नहीं आता कि किसे क्या कहा जाय। हम सब अुसी अेक अीश्वरकी सन्तान हैं। “मैं तुमसे सच कहता हूं कि जो लोग ' प्रभु, प्रभु' की रट लगाते रहते हैं, स्वर्गके राज्यमें अुन सब



लोगोंको नहीं बल्कि अुसीको प्रवेश मिलेगा जो मेरे स्वर्गनिवासी पिताकी अिच्छाका पालन करता है।” – अीसाका यह वचन अलग अलग शब्दोंमें दुनियाके सभी महान धर्मगुरुओंने दोहराया है।

हरिजन, १ॢ-ॡ-१ॡ३६

\* \* \* \* \*

